Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

I/56

श्री बाबू देवकुमार-स्मृति-अंक

PROVINCIAL MUSEUM,
LIBRARY, LUCKNOW.

जैन-सिद्धान्त-भास्कर

भाग १८ किरण १

THE JAINA ANTIQUARY

Vol. XVII. No. 1.

JUNE 1951.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No.______________

Book No.______________

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

I/56

श्री बाबू देवकुमार-स्मृति-अंक

जैन-सिद्धान्त-भास्कर

PROVINCIAL MUSEUM,
LIBRARY, LUCKNOW.

भाग १८ जून १९५१ किरण १

सम्पादक
प्रोफेसर ए० एन० उपाध्ये, एम.ए., डी. लिट्.
प्रोफेसर गो० खुशाल जैन एम. ए., साहित्याचार्य
श्री कामता प्रसाद जैन, एम. आर. ए. एस., डी. एल.
पं० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण
पं० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, साहित्यरत्न

जैन-सिद्धान्त-भवन आरा-द्वारा प्रकाशित

भारत में ३) विदेश में ३॥) एक प्रति का १॥)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विषय-सूची

१ जयतु दिवि श्री देवकुमारः (कविता)—[श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी' १
२ बाबू देवकुमार जी की जीवनी (कविता) – [स्व० श्री जैनेन्द्र किशोर जैन २
३ बाबू देवकुमार जी का महान् त्याग—[श्री १०५ क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी ६
४ स्व० बा० देवकुमार जी की दानशीलता—[पं० कैलाशचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री ७
५ स्वर्गीय बाबू देवकुमारः उदार स्वभाव—[श्रीयुत् पं० सकल नारायण शर्मा, महामहोपाध्याय ११
६ श्रीदेवकुमार जी की दक्षिण यात्रा—[श्री पं० के० भुजबली शास्त्री १४
७ पत्रकार स्व० श्री देवकुमार जैन—[श्री बा० रामबालक प्रसाद साहित्यरत्न १७
८ अभिनन्दनीय का अभिनन्दन (कविता)—[श्री बा० वीरेन्द्र प्रसाद जैन २६
९ श्री बा० देवकुमारः जीवन और विचारधारा—[श्री प्रो० चन्द्रसेन कुमार जैन, एम० ए० .... २८
१० बा० देवकुमार जी के प्रति (कविता)—[श्री महेन्द्र 'राजा' ४७
११ बाबू देवकुमार जी : एक संस्मरण – [श्री पं० हरनाथ द्विवेदी काव्य-पुराणतीर्थ ४८
१२ कुमार का सफल स्वप्न (कविता)—[श्री पं० कमलाकान्त व्याकरण-साहित्याचार्य ५८
१३ युगावतारी श्री बा० देवकुमार—[श्री बा० अजित प्रसाद एम० ए० .... ६१
१४ कतिपय मधुर संस्मरण—[श्रीमती ब्र० पं० चन्दाबाई ६३
१५ प्रशस्तिः श्री देवकुमारस्य (कविता)—[श्री ब्रह्मदत्त मिश्र वेद-साहित्य-धर्मशास्त्राचार्य ७०
१६ बाबू देवकुमार जी की समाज को देन—[श्री बा० छोटेलाल जैन ७१
१७ राजर्षि बाबू देवकुमार—[श्री पं० नेमिचन्द्र शास्त्री ७३
१८ श्रद्धाञ्जलियाँ:—(१) युगप्रवर्त्तक—[रावराजा सरसेठ श्री हुकुमचंद स्वरूपचंद ७८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(२) अनुकरणीय नेता—[सरसेठ श्री भागचंद सोनी ७८
(३) तीर्थभक्त—[श्री सेठ रतनचंद जैन ७९
(४) महान् नेता—[श्री लाला परसादी लाल पाटनी ७६
(५) नारी जाति के उद्धारक—[श्री जैन-बाला-विश्राम.... ८१
(६) अनुपम विभूति—[श्री पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ ८२
(७) इस युग के महान्—[श्री पं० अजितकुमार शास्त्री... ८२
(८) नररत्न—[श्री पं० दरबारीलाल न्यायाचार्य ८३
(९) सहज देवत्व की प्रतिमूर्त्ति—[श्री पं० जवाहर लाल, शास्त्री ८३
(१०) सरस्वती पुत्र—[श्री पं० रामप्रीत शर्मा ... ८४
(११) हिन्दी हितैषी—[श्री बनारसी प्रसाद 'भोजपुरी'... ८५
(१२) स्मरणीय—[श्री पं० नाथूराम प्रेमी ... ८६
(१३) कर्मठ त्यागी—[श्री बुद्धन राय वर्मा ... ८६
(१४) युवकों के पथ-प्रदर्शक—[श्री पं० माधवराम शास्त्री ८६
(१५) महान्—[श्री पं० परमानन्द शास्त्री ८७
(१६) कृतज्ञता (कविता)—श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी ८७
१९ श्री बा० देवकुमार जी का वसीयतनामा— ८८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

PROVINCIAL MUSEUM,
LIBRARY, LUCKNOW.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीमान् बाबू देवकुमार जैन

जन्म :
चैत्र शुक्ल ८, सं० १६३२

मृत्यु :
श्रावण शुक्ल ८, सं० १६६४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीजिनाय नमः

जैन सिद्धान्त-भास्कर

जैनपुरातत्त्व और इतिहास-विषयक षाण्मासिक पत्र

भाग १८ | जून १९५१। आषाढ़, वीर नि० सं० २४७७ | किरण १

जयतु दिवि श्री देवकुमारः

जयतु दिवि श्रीदेवकुमारः ।

बाल्ये विहित-सुविद्याभ्यासः,
विहित-विविध-बुध-कला-विलासः,
सतत-सत्य-व्रत-नियम-पालने—
रतः प्रणत उन्नतोऽप्युदारः ।
जयतु दिवि श्रीदेवकुमारः ।

धर्ममतिर्यतिरिव गतरागः,
धर्म-विधौ कृत-भूरि-त्यागः,
जैन-समाज-सुधीः वसुधायां—
कोऽप्यासीत् देवतावतारः ।
जयतु दिवि श्रीदेवकुमारः ।

यस्य च दाने धनोपयोगः,
यस्य यौवने मर्त्य-वियोगः,
यस्य यशः प्रसरति दिशि-दिशि रे—
कुत्र सोऽद्य क्रियतामाधारः ।
जयतु दिवि श्रीदेवकुमारः ।

—रामनाथ पाठकः 'प्रणयी'
साहित्य-व्याकरणाचार्यः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाबू देवकुमार जी की जीवनी

[ले०—स्व० श्री जैनेन्द्र किशोर जैन]

[स्व० बाबू जैनेन्द्र किशोर जी अपने समय के युगद्रष्टा निबन्धकार; सुकुमाल, मनोरमा, कमलिनी आदि उपन्यासों के प्रणेता; श्रीपाल, कलिकौतुक, अंजना और चन्द्रहास आदि नाटकों के सर्जक; अभिनय कला के मर्मज्ञ; अनेक पत्रों के संपादक; आरा-नागरी-प्रचारिणी-सभा के संस्थापक; स्याद्वाद-विद्यालय-काशी के मन्त्री एवं युगप्रवर्तक श्री बाबू देवकुमार जी के स्नेही मित्र थे। आपकी हस्त लिपि में यह 'जीवन काव्य' १६०८ से 'भवन' के संग्रहालय में सुरक्षित है।]

जैन सुजनके मानको, कारण देवकुमार।
अग्रवाल दीपक यही, धर्मी परम उदार॥
यथा नाम गुण भी तथा, पाये देवकुमार।
धर्मधीर गुण शीलयुत, जैनिनके हितकार॥

देव देव जाने कियो, पूरी मनकी आस।
जिमि दिनेशके उदय ते, जगमें होत विकास॥
धर्मधुरन्धर ज्ञानयुत, जैनिनके सिरताज।
तिनकी छोटी जीवनी, भेंट करों मैं आज॥

श्रीयुत प्रभुदयालजी, जैन जगत विख्यात।
पण्डित आरा नगर में, दूजो नहीं लखात॥
पण्डित दौलतरामके, समय भये मतिमान।
फैलो जैनसमाजमें, जिनको चहुदिकि ज्ञान॥

सोहै काशी नगर में, असी भदैनी घाट।
श्रीसुपार्श्व जिनदेवको, मन्दिर रम्य विराट॥
संवत शतउनीस अरु, तेरह मांहि प्रमान।
देवालय को आपने, कीनोहै निर्मान॥

करी प्रतिष्ठा धूमते, सम्पति बहुत लगाय।
जुरे भविक चहुँ देश ते, प्रमुदित हिय हुलसाय॥
चन्द्रपुरीमें चन्द्रजिन, जनमे तीर्थ महान।
एक जिनालय यहाँ भी, सोहत परम प्रधान॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक जिनालय नगर में, सोहै अतिविख्यात।
यश कीरत की आपको, कहिये क्या २ बात॥
एकाहारी ये रहे, चालिस वर्ष प्रमाण।
आयू चौंसठ वर्ष में, पूरन भई सुजान॥

श्रीयुत प्रभुदयालके, सुत श्री चन्द्रकुमार।
इकतिसकी आयु भये, छोड़ि गये संसार॥
ज्येष्ठ तनय इनके भये, श्रीयुत देवकुमार।
यथानाम गुण भी तथा, जानत है संसार॥

होनहार तेहि अनुज ये, बाबू धर्मकुमार।
जाकी विद्या बुद्धि थी, अतिशय परम अपार॥
बी. ए. तक पाठी भये, धर्म ध्यान लवलीन।
पढ़े संस्कृत शास्त्र बहु, होनहार परवीन॥

अविवेकी यह काल है, कहयो नहीं कछुजात।
कच्ची कली को तोड़ते, तनिक नहीं सकुचात॥
बाल वृद्ध वनिता बधू, सबको ये भखि जाय।
पर इस पापी क्रूर को, नहि कोऊ भी खाय॥

हाय! हाय! इस दुष्टने, दीने हृदय मरोर।
अन्त इन्हें भी भखि गयो, कीनो यतन करोर।
श्रीयुत देवकुमारकी, कही कहानी रोय।
जैसी हो होतव्यता, तैसी बातें होय॥

सम्बत शत उनीस अरु, तैंतिस चेत्रहि मास।
शुक्ल अष्टमी के दिना, जगमें भयो प्रकाश॥
बाल समय ही आपने, देखा पिता बियोग।
तथा अनुज ये ही भये, क्या २ कहिये सोग॥

धर्मवीर ने धैर्ययुत, सहन किये सब शोक।
रोते थे सब लोगही, इनकी दशा बिलोक॥
अंग्रेजीमें आपने, एफ. ए. कीन्हों पास।
धर्म पन्थ ये रत रहे, जगते सदा उदास॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अहर्निश यही सोच थी, सुधरै जैनसमाज।
अन्त समय तक धुन यही, कीने बहु २ काज॥
जैन गजट उन्नति भई, निकले बहु उपदेश।
धर्म ध्वजा फहरत भई, याकी देश विदेश॥

याही आरा नगरमें, थापी एक चटशाल।
जामें शिक्षा पाया करें, निज जातीके बाल॥
जैन शास्त्र संग्रह किये, थापे एक भंडार।
बिरले ऐसे होत हैं, जातीके हितकार॥

कन्याशाला भी खुली, इनकी कृपा अधार।
अबला जन के बीचमें, शिक्षा होत प्रचार॥
काशी शालाको कियो, यथा रीति परबन्ध।
जाकी देश विदेश में, फैली चहूँ सुगन्ध॥

महासभा के आपही, हितकारी सिरताज।
करि अनाथ सबको गये, रोवत जैनसमाज॥
कर में जैन जहाजकी, थामी तो पतवार।
गये कहाँ किस भाँति, यहाँको बेड़ापार॥

जीकी, जी ही में रही, किये न, कछु उपचार।
काल बलीने क्या कियो, भाख्यो हृदय कुठार॥
सरस्वती भण्डार को, कीनो तो उत्थान।
करकमलोंसे नहि भयो, ऐसो कार्य्य महान॥

असोसियेशन जैनके, उपनेता थे आप।
सौंप गये किसपर इसे? क्या क्या करूं विलाप॥
हाय पिताकी उम्रमें, तुमने भी तजि दीन।
जगमें तुमसा कौन है, ज्ञानी परम प्रवीन॥

धर्म ध्यानमें आपने, तजि दीनों संसार।
नौका जन-समाजकी, छोड़ि गये मझधार॥
श्रावण शुक्ला अष्टमी, तुमने तजो शरीर।
जैनजाति सुनके भई, याते परम अधीर॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चहुँदिक हाहाकार है, शोक महा संताप।
बालवृद्ध बनिता बधू, सबही करत प्रलाप॥
धैर्य २ ! ये भ्रात गण, यही जगत की रीत।
काल बलीके सामने, कछुनहिं नीत अनीत॥

माया जगकी अमित है, यह संसार असार।
एक दिना सब जायेंगे, यही जगत व्यवहार॥
विभव सदा नहिं रहि सकै, तथा शरीर अनित्त।
काल सदा सिर पर खड़ो, धर्महि दीजे चित्त॥

मृत्यु जबलौं दूर है, जब लौं देह निरोग।
धर्मपन्थ साधन करो, वृथा जगतको भोग॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाबू देवकुमार जी का महान् त्याग

[श्री १०५ क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी]

बन्धुवर, संसार में जो जन्मता है वह अवश्य मरण को प्राप्त होता है; किन्तु जो जन्म लेकर परोपकार कार्य कर जाता है, जन्म उसीका ही सार्थक है— हमारे स्वर्गीय बाबू देवकुमार जी का जन्म केवल स्वकल्याण में ही न गया, परन्तु आपके द्वारा ऐसे कार्य निष्पन्न हुए जिनसे प्राणी मात्र को लाभ पहुंच रहा है। आप ही की उदारता का फल है जो आज स्याद्वाद विद्यालय द्वारा अनेक छात्र प्रति वर्ष स्नातक होकर निकलते हैं— आपने केवल आर्थिक सहायता ही नहीं दी साथ ही साथ विद्यालय को गंगा के तटपर एक विशाल भवन भी दिया, जिसमें १०० छात्र अध्ययन कर सकते हैं, जिसका निर्माण वर्तमान में ५ लाख रुपये में भी होना सम्भव नहीं। यह आपका महान् त्याग है; इसकी समता करना अनुचित होगा। हमारा विश्वास है कि जैन समाज में प्रौढ़ शिक्षा का बीजारोपण इसी संस्था द्वारा हो रहा है; अतः इसका श्रेय बाबू साहब को अत्यधिक है। उनकी आत्मा स्वर्ग में भी विद्यालय की कीर्ति से प्रसन्न होती होगी। यही नहीं आरा में एक सरस्वती भवन भी खोल गए, जिसमें सहस्रों शास्त्र ताड़पत्र पर लिखे हुए विद्यमान हैं—इसके सिवाय शिखिर जी बीसपंथी कोठी के उत्तम प्रबन्ध में सहायक हुए तथा जिस समय कुँडलपुर क्षेत्र में महासभा हुई उस समय उसके सभापति आपही थे। उस समय ४०००० जनता वहां उपस्थित थी, आपने जो निर्भीक होकर भाषण दिया, यदि जैन जनता उस पर आरूढ़ होकर चलती तब उसका यह जो ह्रास देखा जाता है; न होता। अस्तु मैं उनके त्यागका सानुमोदक हूँ; आपके सुपुत्र बाबू निर्मल कुमार व चक्रेश्वर कुमार भी उसी मार्ग पर चल रहे हैं। आपने जिस विशाल भवन में गंगा तटपर जो विद्यालय चल रहा है, वह भवन स्याद्वाद विद्यालय को अर्पण कर दिया है।

आज तक जो व्यय भवन की मरम्मत में लगता था, आपके द्वारा ही दिया जाता रहा है, एतदर्थ मैं क्या सम्पूर्ण जैन जनता आपका शुभ स्मरण रखेगी। आपका कुटुम्ब मात्र धर्मज्ञ है; वर्तमान में जो जैन-बालाविश्राम जिसमें सैकड़ों जैन कन्या, महिला व विधवाएँ शिक्षा पा रही हैं, आपही के स्वर्गीय लघु भ्राता की धर्मपत्नी श्री ब्र० चन्दाबाई जी ने स्थापित किया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्व० बा० देवकुमार जी की दानशीलता

[ले०—श्रीयुत् पं० कैलाशचन्द्र सिद्धान्त-शास्त्री]

जैन समाज के बहुसंख्यक विद्वानों का जनक श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी के गंगातट पर स्थित जिस विशाल भवन में अपने जन्मकाल से स्थापित है, क्या आपने कभी उसे देखा है? यदि देखा है तो क्या आपने उस भवन की महत्ता और सुरम्यता का अनुभव किया है? यदि किया है तो आप उस घराने की उदारता, धर्मप्रेम और सुरुचि का अनुमान सरलता से कर सकते हैं, जिसने उसका निर्माण कराया और उसे जैन समाज के उपयोग के लिये दे दिया।

मैंने स्व० बा० देवकुमारजी को नहीं देखा। किन्तु जब मैं श्री स्याद्वाद महाविद्यालय में प्रविष्ट हुआ तो उसके भवन में उनका चित्र देखा और विद्यालय की स्थापना के साथ उनके जीवन के लगाव की कथा सुनी। फिर उसके वार्षिकोत्सव के अवसर पर उनके दोनों सुकुमार पुत्रों को देखा और अभिनन्दन के उत्तर में बोलते सुना उनके बड़े पुत्र बा० निर्मलकुमार जी को--'हम अपने पिता के पद चिन्हों पर चलने का प्रयत्न करेंगे।' स्व० बा० देवकुमार को देखने की मेरी बालसुलभ उत्कण्ठा तो शान्त हो गयी किन्तु ऐसे महापुरुष का केवल इकतीस वर्ष की अवस्था में उठ जाना बहुत कसका। और यह एक ऐसी कसक है जो कभी मिट नहीं सकती। सन् १९०८ के ५ अगस्त की रात्रि कालरात्रि थी। उसी कालरात्रि को ११ बजे कलकत्ता में वह पुण्य पुरुष विलीन हो गया और जैन समाज पर अन्धकार छा गया।

बा० देवकुमार जैसे धनिक और विद्वान थे, वैसे ही धर्मात्मा भी। साढ़े तीन महीने की कठिन बीमारी में भी मृत्यु के दिन तक कभी जिनेन्द्रदेव का दर्शन किये बिना आपने औषधि नहीं ली। अपना अन्त समय निकट जानकर आपने श्री नेमिसागर जी वर्णी को पहले से ही अपने पास बुला लिया था। अतः आपने समाधिपूर्वक इस शरीर का परित्याग किया। बीमारी में उन्हें असह्य कष्ट उठाना पड़ा, किन्तु अपने कर्मों का परिपाक समझ कर शान्ति के साथ उसे सहन किया।

उसी वर्ष आप कुण्डलपुर (दमोह) में दि० जैन महासभा के अधिवेशन के सभापति हुए थे। उस समय समाज की उन्नति के लिये आपने जो व्याख्यान दिया था उसकी सर्वत्र सराहना हुई थी। वह समय कई दृष्टियों से बड़े संकट का था। एक जो बाबू, पंडितों और सेठों के झगड़े का सूत्रपात हो चुका था और दूसरे उसी समय भारत के लार्ड मिण्टो ने यह हुक्म दिया था कि 'शिखर जी के पश्चिमी पर्वतों पर अंगरेज और पूर्वीय पर्वतों पर हिन्दुस्तानी अपने अपने बँगले बनवा सकते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बीच की पहाड़ियाँ जहाँ जैनियों के मन्दिर बने हैं, जमीन्दार की हैं। उसके लिये ऊंची से ऊंची रकम देकर कोर्ट ऑफ वॉर्डस् से खरीदने की अर्जी जैन लोग दें, अन्यथा वहाँ भी बँगले बनेंगे।'

इस हुक्म से समाज में तूफान उठ खड़ा हुआ। तभी यहाँ महासभा का अधिवेशन हुआ। मुझे एक सज्जन ने, जो उस अधिवेशन में मौजूद थे बतलाया कि लोगों में इतना जोश था कि प्रथम दिन ही अधिवेशन की कार्रवाई करना कठिन हो गया। सभापति बा० देवकुमार जी तो देवकुमार ही थे। आप बड़े ही सरल, सीधे, सहिष्णु, विनयी और बोलचाल तथा वर्ताव में अत्यन्त नम्र थे। किन्तु आपके साथ जो आपका कोई कारकुन था, वह बहुत ही चतुर था, उसने तुरन्त ही खड़े होकर कहा कि सरकार अत्याचार करने पर तुली है। और हम जीते जी शिखर जी पर कोई बँगला नहीं बनने देंगे। सबसे प्रथम शहीद होने के लिये मैं अपना नाम लिखाता हूँ। अब और भाई नाम बोलते जायें।

इतना सुनते ही लोगों की बोलती बन्द हो गयी और सोडावाटरी उफान शान्त हो गया। फिर सभा का काम शांति के साथ हुआ।

महासभा के उक्त अधिवेशन में दो काम उल्लेखनीय हुए। एक तो पं० गोपालदास जी के अत्याग्रह से महासभा का उद्देश्य धार्मिक विद्या और धर्म से अविरुद्ध लौकिक विद्या की उन्नति करना हो गया। दूसरा कार्य महाविद्यालय का स्थान सहारनपुर से बदलकर काशी में कर दिया गया। काशी में श्री स्याद्वाद पाठशाला की स्थापना पहले ही हो चुकी थी और बा० देवकुमार जी के पितामह पं० प्रभुदास जी के वर्तमान भवन में ही स्थापित थी। इसके प्रथम मन्त्री स्व० बा० देवकुमार जी ही थे। महासभा के महाविद्यालय को उसमें मिला देने से ही उसका नाम स्याद्वाद पाठशाला से स्याद्वाद महाविद्यालय रखा गया था। किन्तु बाद में महासभा का महाविद्यालय पुनः अलग हो गया। अस्तु,

स्व० बा० देवकुमार जी को प्राचीन शास्त्रों की सुरक्षा और धार्मिक शिक्षा से बहुत ही प्रेम था। आप अपने दोनों पुत्रों को भी पहले धार्मिक शिक्षा दिलाकर पीछे लौकिक शिक्षा दिलाना चाहते थे। इसके लिये आपने पं० लालाराम जी को बम्बई से बुलाकर अपने यहाँ रक्खा था। अपनी भ्रातृ-पत्नी श्री० पं० ब्र० चन्दाबाई जी को शिक्षा दिलाकर इस योग्य बनाने का श्रेय भी आपको ही है। विद्याप्रेम का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण और क्या हो सकता है?

जिनवाणी की रक्षा के लिये भी आप सदा प्रयत्नशील रहते थे। एक बार आप दक्षिण प्रान्त की यात्रा के लिये बम्बई गये। आपकी इच्छा थी कि दानवीर सेठ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

माणिकचन्द जी की सहायता तथा संरक्षा में एक सरस्वती भण्डार स्थापित किया जाय, जिसके द्वारा सम्पूर्ण प्राचीन भण्डारों की फिहरिस्त तैयार कराके उनकी रक्षा की जावे, तथा जिन ग्रन्थों के जीर्णोद्धार की आवश्यकता हो, उनकी प्रतियाँ लिखवा लिखवा कर एकत्र की जावें और उनसे समाज को लाभ पहुंचाया जावे। इस विषय में आपने दो तीन सभाएँ भी की और स्वयं दो हजार रुपया देना चाहा, परन्तु चन्दा न हो सकने से काम नहीं हुआ। आपने आरा में एक सरस्वती भवन स्थापित किया, जो आपके सुपुत्रों के प्रयत्न से आज एक दर्शनीय संस्था है।

अन्त समय भी आप दस हजार रुपया एकमुश्त और पाँच हजार वार्षिक का दान कर गये थे। आपकी रुचि का पता उस दान की तालिका से लगता है। अतः वह नीचे दी जाती है, जिससे दानी सज्जन शिक्षा ले सकें कि दान किस मद में देना चाहिये—

१	जैन मन्दिर आरा	५००)	वार्षिक	ये मन्दिर आपके पितामह और पिता के बनवाये हुए हैं।
२	" भदैनीघाट बनारस	३००)	"	
३	" चन्द्रपुरी	२००)	"	
४	" गढ़वा (प्रयाग)	२००)	"	
५	सरस्वती भवन	१५००)	"	
६	छात्रवृत्तियाँ धर्मशिक्षा	५००)	"	
७	औषधालय सम्मेदशिखर	८००)	"	
८	तीर्थक्षेत्रों की रक्षा	२००)	"	
९	जैनधर्म का प्रचार करनेवालों की असहाय विधवाओं को	१००)	"	
१०	जैन पाठशाला आरा	५००)	"	
११	श्रवणबेलगोल पाठशाला	२००)	"	
		५०००) वार्षिक		

एकमुश्त

१	सरस्वती भवन	२०००)
२	जैन मन्दिर मन्दारगिरि	५००)
३	गोम्मटेश कलशाभिषेक	१७५)
४	गढ़वा के मन्दिर के प्रतिष्ठार्थ	५०००)
५	सम्मेदशिखर के रक्षार्थ	१५००)
६	जैन अनाथालय हिसार को २६ बीघा जमीन और	७५०)
७	अन्धे लगड़ों को	७५)
		१००००)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाबू साहब ने जैन समाज का बड़ा उपकार किया, किन्तु उसने उनकी स्मृति में क्या किया। अपने उपकारी को भी भुला देना सब से बड़ी अकृतज्ञता है। किन्तु वह इस तरह न जाने कितनों को भुला चुका है। अतः उससे इस सम्बन्ध में अब कुछ कहना तो बेकार ही है। किन्तु उनके सुपुत्रों के सामने हमें एक दो सुझाव अवश्य रखना है। एक तो जैन-सिद्धान्त-भास्कर के ऊपर बा० देवकुमार जी का एक छोटा सा ब्लाक अवश्य रहना चाहिये। दूसरे उनके नामकी ग्रन्थमाला चालू रहनी चाहिये। वैसे भवन तो उनका जीवित स्मारक है ही।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

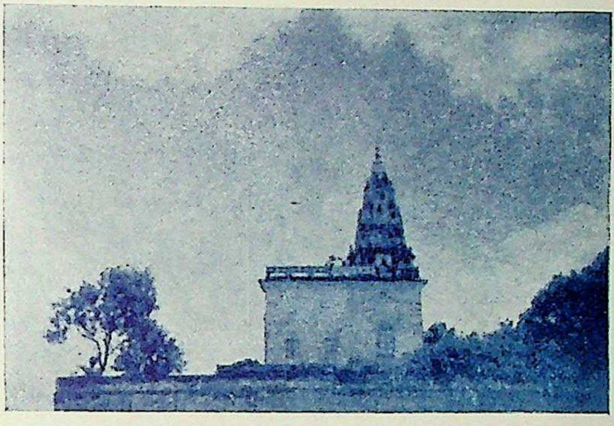

स्व० श्री बाबू देवकुमार जी द्वारा संवर्द्धित दिगम्बर
जैन मन्दिर चन्द्रपुरी (चन्द्रावती)

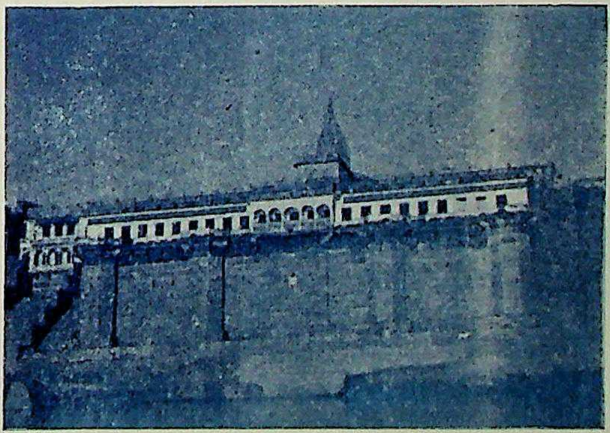

स्व० श्री बाबू देवकुमार जी द्वारा समर्पित भवन—
श्री स्याद्वाद दि० जैन महाविद्यालय, भदैनी, काशी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वर्गीय बाबू देवकुमार : उदार स्वभाव

[ले०—श्रीयुत् पं० सकलनारायण शर्मा, महामहोपाध्याय]

बाबू देवकुमार मेरे बचपन के साथी थे। इनकी सम्पत्ति कोर्ट ऑफ वार्ड्स् में थी। उस समय इनके रहने का मकान बहुत बढ़िया नहीं था। इन्हें मितव्ययिता का अभ्यास था। बाबू देवकुमार और बाबू धर्मकुमार ये दोनों भाई आपस में अत्यन्त स्नेह से रहते थे। देवकुमारजी अपने छोटे भाई धर्मकुमार को योग्य बनाना चाहते थे। संस्कृत और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं का उनको पूरा ज्ञान था। देवकुमारजी ने बाबू धर्मकुमारजी को पढ़ाने के लिये अधिक वेतन पर प्रोफेसर और अध्यापकों को नियुक्त किया था। धर्मकुमार प्रतिभा, रूप और गुण में अद्वितीय थे।

हमें एक बचपन की घटना याद आ रही है। बाबू रामकृष्ण दास के अनाइट वाले उद्यान में बाबू जयबहादुर की बालमण्डली जब-तब क्रीड़ा और भोज के लिये चली जाया करती थी। इस बालमण्डली में बाबू देवकुमार भी शामिल रहते थे। भोज का प्रबन्ध सभी प्रमुख बाल लीडरों की ओर से होता था। बाबू देवकुमार इस भोज प्रणाली के विरुद्ध थे, अतः उनकी ओर से भोज का प्रबन्ध नहीं हुआ। एक दिन बालमण्डली ने तय किया कि आज गुप्तरूप से भोज का प्रबन्ध बाबू देवकुमार की ओर से किया जाय और निमन्त्रण भी उन्हीं की ओर से बाँटा जाय। फलतः सभी साथियों में बाबू देवकुमार के नाम से निमन्त्रण बाँटा गया और बगीचे में दो हलवाइयों को ले जाकर भोज के लिये सभी श्रेष्ठ खाद्य पदार्थ तैयार कराये गये।

बाबू देवकुमारजी को भी भोज का निमन्त्रण दिया गया। दैवात् उन्होंने निमन्त्रण को पढ़ा नहीं और वे बाबू जयबहादुर के साथ उद्यान में भोज में पधारे। भोज समाप्त होने पर उनके सामने हलवाई का बिल पेश किया गया और सारी घटना बतला दी गयी। बाबू देवकुमार इस घटना से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने तुरत अपनी कोठी से हलवाई का बिल चुका देने का आर्डर दे दिया। इस प्रकार बाल-मण्डली में एक खासी चुलहबाजी रही। यह बालमण्डली और नाना प्रकार के मनोविनोद और आमोद-प्रमोदों द्वारा अपना मनोरंजन, ज्ञानसंवर्द्धन एवं बौद्धिक विकास किया करती थी। सामयिक विषयों पर चर्चा करना, देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा के अभ्युत्थान के लिये प्रोग्राम तैयार करना तथा भारतीय संस्कृति के उन्नयन के लिये प्रयास करना भी इस बालमण्डली का लक्ष्य था। केवल भोज करना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

या कुछ खेल खेलकर जी बहलाना इसका लक्ष्य नहीं था; किन्तु अपना सर्वाङ्गीण विकास करना तथा सेवा के कार्यों में आगे रहना इस मण्डली का कर्त्तव्य था।

दान देने की प्रवृत्ति बाबू देवकुमार में आरम्भ से ही थी। अनाथों, छात्रों और विधवाओं को शक्ति अनुसार सदा दान दिया करते थे। नागरी प्रचारिणी सभा आरा को इन्होंने पुष्कल मासिक चन्दा दिया, इनकी देखादेखी और लोगों ने भी चन्दे की रकम बढ़ा दी।

बाबू देवकुमार को पुस्तक पढ़ने से अधिक रुचि थी। यह एकान्त में बैठकर अंग्रेजी और संस्कृत की पुस्तकें पढ़ते रहते थे। पढ़ने के साथ बचपन से ही मनन भी करते थे। जैनधर्म और जैनसंस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन की लगन इनमें आरम्भ से ही थी। इनका भाषण बहुत ही मधुर और ओजस्वी होता था। श्रोता मन्त्रमुग्ध की तरह इनका भाषण सुनते रहते थे। नौकरों पर हुक्म चलाने की अपेक्षा यह अपने हाथ से काम करना ज्यादा पसन्द करते थे। इनकी सूझ विलक्षण थी। किसी भी बात को खूब ठोक-पीट कर ही स्वीकार करते थे।

अन्तिम समय बाबू देवकुमार ने एक दान-ट्रष्ट किया है। इससे इनके द्वारा स्थापित श्री जैन-सिद्धान्त-भवन आरा, श्री जैन कन्या पाठशाला आरा, धर्मार्थ धर्मकुमार औषधालय एवं कई जैन मन्दिर चल रहे हैं। बाबू देवकुमार के साथ उनकी मृत्यु के समय धार्मिक गुरुओं के अतिरिक्त बाबू करोड़ीचन्द भी थे। इन्होंने सांसारिक माया-मोह को छोड़ कर बड़ी शान्ति और धैर्य के साथ प्राणों का त्याग किया था।

इनके द्वारा स्थापित जैन-सिद्धान्त-भवन आरा केवल जैनों के लिये ही गौरव की वस्तु नहीं है, किन्तु यह समस्त आर्य संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने में सहायक है। बिहार तो इस संस्था से गौरवान्वित है ही, पर समग्र भारत में ऐसी संस्थाएँ थोड़ी हैं। इस संस्था का मुखपत्र जैन-सिद्धान्त-भास्कर ऐतिहासिक और पुरातत्त्व विषयक महत्त्व-पूर्ण पत्र है। इसमें उच्चकोटि की साहित्यिक सामग्री रहती है। जैन इतिहास अभी भी अन्धकार में है; इस पत्र ने जैन इतिहास के अनेक महत्व पूर्ण निष्कर्षों को जनता के सामने रखा है। भारतीय संस्कृति की महत्ता और गौरव को प्रकट करने में जैन-सिद्धान्त-भास्कर का महत्वपूर्ण स्थान है।

बाबू धर्मकुमार की असामयिक मृत्यु के उपरान्त इन्होंने उनकी धर्मपत्नी चन्दाबाईजी को सब प्रकार से शिक्षा-दीक्षा देकर योग्य विदुषी बनाया था। इन्हींके विचारों के फलस्वरूप श्री जैन-बाला-विश्राम जैसी गौरवपूर्ण महिला-संस्था आज समाज को मधुर फल चखा रही है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाबू देवकुमार जी मेरे लंगोटिया साथी थे, नागरी प्रचारिणी सभा आरा की उन्नति में उनका योग था। बाल्यकालीन और यौवन कालीन उनकी अनेक स्मृतियाँ आज भी मेरे हृदय में ज्यों की त्यों वर्तमान हैं। उनका स्नेही और उदार स्वभाव भुलाये नहीं भूलता है। यों तो उनमें मानवोचित सभी गुण थे, पर सौहार्द, सौजन्यता के साथ उदारता उच्चकोटि की थी। यद्यपि भोग-विलास में मितव्ययी थे, पर परोपकार के कार्यों में सदा आगे रहते थे। मुझे विश्वास है कि वे यदि थोड़े दिन और जीवित रहते तो निश्चय ही जैन समाज को नवीन सांस्कृतिक चेतना प्रदान करते। मात्र ३१ वर्ष की आयु में उनका देहवसान हो जाना, समाज के लिये अभिशाप सिद्ध हुआ है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीदेवकुमारजी की दक्षिण-यात्रा

[ले०—श्रीयुत् पं० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण, मूडबिद्री]

तिथि-संवत् स्मरण नहीं है। आप मितपरिवार के साथ आरा से चलकर इलाहाबाद-आगरा-जयपुर होते हुए गिरनार पहुँचे। वहाँ पर कुछ दिन ठहरकर दर्शनपूजन आदि अभीष्ट पुण्य कार्यों को सानंद संपन्न कर वहाँ से शत्रुञ्जय गये। आप शत्रुञ्जय की यात्रा निरंतराय समाप्त करके बम्बई आये। बम्बई में आप स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्रजी के सम्मान्य अतिथि रहे। उस जमाने में माणिकचन्द्रजी दिगम्बर जैन समाज के एक उज्ज्वल रत्न समझे जाते थे। दिगम्बर जैन समाज जबतक जीवित रहेगा, तबतक उपर्युक्त दानवीर के महान् उपकार को भूल नहीं सकता। आपने दिगम्बर जैन समाज के उत्कर्ष के लिये बहुत कुछ किया है। बल्कि यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वर्तमान युग में माणिकचन्द्रजी ने दिगम्बर जैन समाज को ऊपर उठाने के लिये जितना प्रयत्न किया था, उतना प्रयत्न आजतक किसीने नहीं किया है। उस जमाने में सेठ साहब से सारा दिगम्बर जैन समाज भले प्रकार परिचित था। आपके स्नेहपूर्ण विशाल हृदय में अपने कुटुम्ब की चिन्ता से भी अधिक चिन्ता समाज की रही। आप समाज के अभ्युदय के लिये रात दिन सोचा करते थे। दानवीरजी के जमाने में जैन समाज का कोई भी हितेच्छु अगर बम्बई आ जाय तो उसे अपने यहाँ आमंत्रित कर योग्य सत्कार बिना किये नहीं जाने देते थे। ऐसी परिस्थिति में देवकुमारजी का सेठ साहब के यहाँ ठहर जाना सर्वथा स्वाभाविक ही रहा। क्योंकि उस जमाने में माणिकचन्द्रजी के बाद समाज में आप ही का नाम लिया जाता था।

हाँ, यहाँ पर एक आवश्यक बात का उल्लेख करना मैं भूल गया था। वह यह है कि देवकुमारजी की इस पुण्य यात्रा के प्रेरक एवं मार्गदर्शक श्रद्धेय नेमिसागरजी वर्णी थे। वर्णीजी पर देवकुमारजी की असीम श्रद्धा और भक्ति थी। कुमारजी वर्णीजी को अपने एक अनन्य हितेच्छु ही मानते थे। प्रत्येक धार्मिक कार्य में आप वर्णीजी से राय लेते थे। आपको वर्णीजी की बातों पर बड़ी श्रद्धा थी। अतएव देवकुमारजी कौटुम्बिक उलझनों में भी कभी-कभी वर्णीजी से सलाह भी लेते थे। देवकुमारजी ने अपने मरणकाल में भी वर्णीजी को यहाँ से कलकत्ता बुलवाकर आप ही के हाथ से समाधिमरण का व्रत लिया था। हाँ, इस प्रसंग पर यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि वर्णीजी को अपने यहाँ आश्रय देकर आपके अध्ययन की ठीक ठीक व्यवस्था करने का पूर्ण श्रेय भी देवकुमारजी को प्राप्त था। वर्णीजी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ने आरा में रहकर ही विशेष पाण्डित्य हासिल किया था।

खैर, देवकुमारजी बम्बई से मैसूर आये। मैसूर में आप मोतिखाने अनंतराजय्य के यहाँ ठहरे। अनंतराजय्य एक धर्म श्रद्धालु श्रीमान् थे। उन्होंने देवकुमारजी का अच्छा आदर सत्कार किया। मैसूर में दो-चार रोज रहकर वहाँ के दर्शनीय स्थानों को देखकर देवकुमारजी बैलगाड़ी पर श्रवणबेलगोल गये। श्रवणबेलगोल की यात्रा सहर्ष संपन्न करके आप धर्मस्थल आये। उस समय धर्मस्थल में चंदय्य हेग्डे थे। देवकुमारजी श्रवणबेलगोल से धर्मस्थल भी बैलगाड़ी पर ही आये। क्योंकि उस समय बस सर्विस आदि और कोई वाहनसौकर्य नहीं था। श्रवणबेलगोल से धर्मस्थल, मूडबिद्री आदि स्थानों के लिये घने जंगलों के बीच चार्माड़ि घाटी से नीचे उतरना पड़ता था। पर ऐसे भयानक मार्ग में भी चोर लुटेरे आदि दुष्टों का कोई भय नहीं था। धर्मस्थल में देवकुमारजी का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। इसे देखकर गुजर धर्मचंदजी से जो कि यात्रा के ही उद्देश्य से देवकुमारजी के संघ में बम्बई में सम्मिलित हुए थे और जिनको नेमिसागरजी वर्णी की योग्यता पर कम विश्वास था, देवकुमारजी ने वर्णीजी की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। धर्मचंदजी ने भयंकर जंगलों में गुजरते हुए एक दिन देवकुमारजी से वर्णीजी के बारे में यहाँ तक कहा डाला था कि इस फकीर पर विश्वास करके आप इस भीषण जंगल में बाल बच्चों को लेकर कैसे आये। उस समय देवकुमारजी ने धर्मचंदजी को यह लाजबाब उत्तर दिया था कि आप इस फकीर को नहीं पहिचानते हैं। इनमें दो-चार नहीं पचास सिपाहियों का बल है।

अस्तु, धर्मस्थल में देवकुमारजी सकुटुम्ब कुछ रोज ठहरे। हेग्डेजी ने आपका बड़ा आदर-सत्कार किया। इस बीच में एक दिन वर्णीजी ने अपनी पूर्व भावनानुसार देवकुमारजी तथा हेग्ड़ेजी के समक्ष मूडबिद्री में एक संस्कृत पाठशाला स्थापित करने का शुभ प्रस्ताव रक्खा। साथ ही साथ इस कार्य के लिये आपने स्वर्गीय मल्लन शेट्टिजी के विशाल भवन को जो कि जैन मठ के सामने वर्तमान था, खरीदने का अभिप्राय भी व्यक्त किया। मल्लन शेट्टिजी का यह मकान आपको कोई संतान न होने के कारण सरकार के अधीन हो गया था। मूडबिद्री में एक धार्मिक पाठशाला स्थापित करने के प्रस्ताव का देवकुमारजी तथा हेग्डेजी दोनों ने सहर्ष समर्थन किया। हाँ, मकान खरीदने के लिये द्रव्य की आवश्यकता हुई। इसके लिये मूडबिद्री में एक सभा बुलाने की आयोजना सोची गयी। सभा बुलायी गई। उस सभा में मकान खरीदने में जितना रुपया लगेगा उसका आधा हेग्डेजी ने देने को कहा। शेष आधा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कट्टेमार दोड्डुम्म शेट्टी से दिलाने को वर्णीजी ने वचन दिया। पाठशाला स्थापित करने का शुभ समाचार धर्मस्थल से ही अरलगुम्मएण शेट्टिजी को भी दिया गया था। सभा में आप भी सम्मिलित हुए थे। मूडबिद्री में देवकुमारजी देरम्मा शेट्टिजी के यहाँ ठहराये गये थे और वहाँ पर आपकी कुल व्यवस्था सपरिश्रम पं० नेमिराजजी ने की थी। देवकुमारजी को लिवा लाने के लिये श्री पद्मनाभ शेट्टिजी, नेमि इन्द्रज आदि मूडबिद्री के प्रमुख वहाँ से ६-७ मील की दूर ही पर गये थे। मूडबिद्री में देवकुमारजी का अच्छा सम्मान हुआ। आप यहाँ पर कई दिन ठहरे। पाठशाला के प्रबन्ध के लिये यहाँ पर कुछ रोज ठहरना आवश्यक भी था।

अपनी पूर्व स्वीकृति के अनुसार मकान खरीदने के लिये हेग्डेजी ने पाँच हजार और दोड्डुम्म शेट्टी ने पाँच हजार इस प्रकार दोनों ने मिलकर दस हजार चन्दा किया। पर जिलाधीश की उदार कृपा से मकान तो साढ़े आठ हजार में ही मिल गया। क्योंकि जिलाधीश धर्मश्रद्धालु व्यक्ति थे। बस, उसी समय मूडबिद्री में बाकायदा पाठशाला स्थापित हुई। बल्कि इसके उपरान्त देवकुमारजी की ही प्रेरणा से इसी यात्रा में अंग्रेजी पढ़नेवाले जैन विद्यार्थियों के लिये मंगलूर में एक छात्रालय एवं कारकल में एक संस्कृत पाठशाला और स्थापित हुई। इसमें शक नहीं है कि देवकुमारजी की यह यात्रा सर्वप्रकार से सफल रही और उत्तर प्रान्तवालों से खासकर आरावालों से यहाँ वालों का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। बल्कि जैन-सिद्धान्त-भवन स्थापित करने की प्रेरणा भी आपको यहीं से मिली।

यह यात्राविवरण पूज्य वर्णीजी के द्वारा कही गयी बातों के आधार पर ही लिखा गया है। इसमें अपना कुछ भी नहीं है। बल्कि वर्णीजी का कहना है कि देवकुमारजी की यह यात्रा जिस शान से हुई थी उस शान से उत्तर प्रान्तवालों में से आजतक किसीकी नहीं हुई। इस यात्रा म दक्षिण के भाइयों ने आपका बड़ा सम्मान किया था।

बायें ऊपर से नीचे की ओर—

१ सन्तोष कुमार	२ प्रबोध कुमार	३ अमोद कुमार	४ योगेन्द्र कुमार	५ प्रेम कुमार	६ विमल कुमार	७ अतुल कुमार	८ सुबोध कुमार	९ सरोज कुमार
•महेश कुमारी	•नन्द रानी	•ध० प० बा० निर्मल कुमार	•बाबू निर्मलकुमार	•नेमसुन्दर बीबी (अनुजा)	•बा: चक्रेश्वर कुमार	•धर्मपत्नी बाबू चक्रेश्वर कुमार	•शान्ता देवी	•कमला देवी
		•शशि प्रभा	•ब्र• पं० चन्दाबाई	•सोम प्रभा	•ध: प: बा: देवकुमार	•रविप्रभा		

देव परिवार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

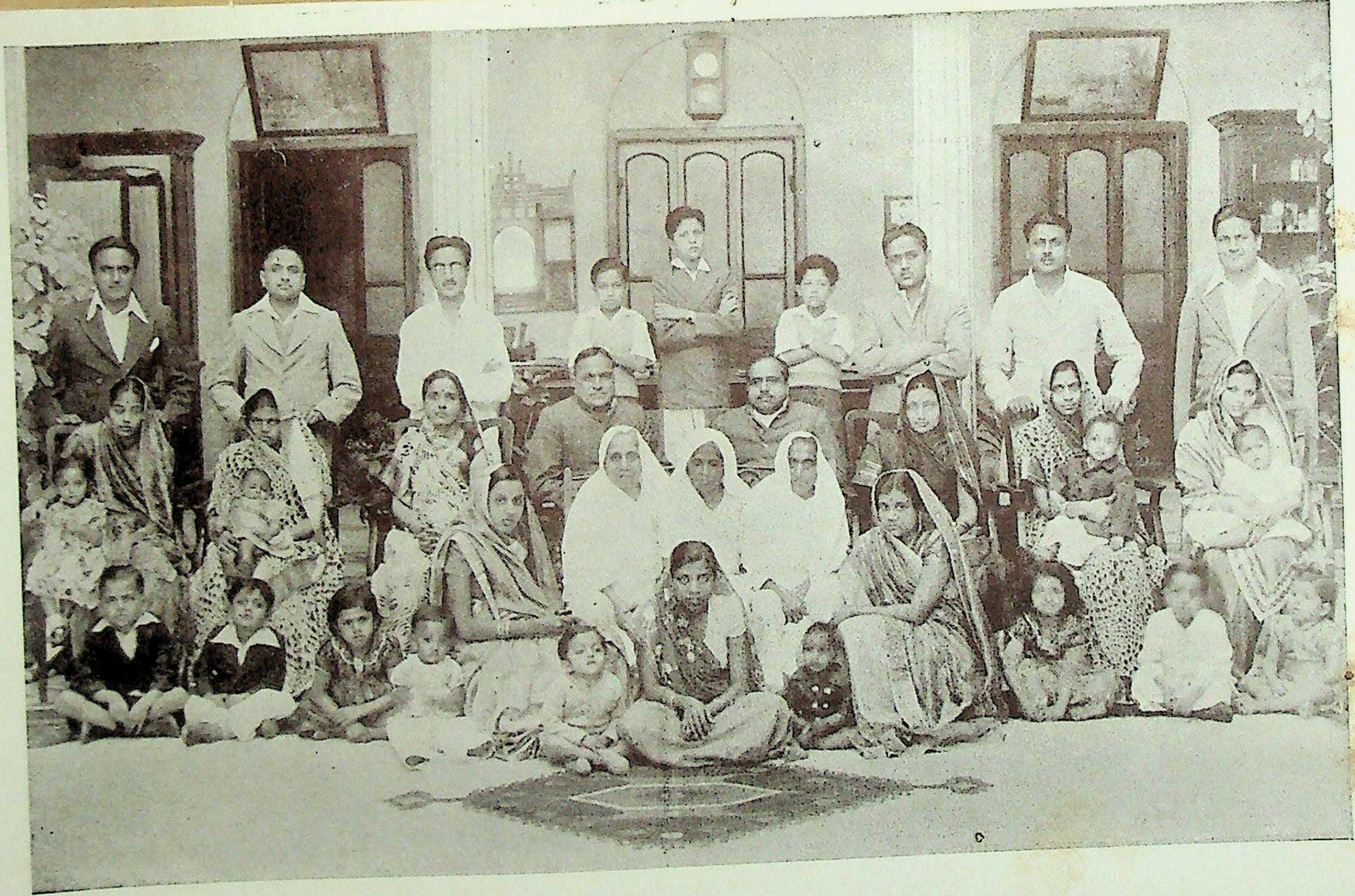

देव परिवार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पत्रकार स्व० श्री देवकुमार जैन

[ले०—श्रीयुत् बा० रामबालक प्रसाद साहित्यरत्न]

स्व० श्री देवकुमार जैन आरा शहर (जि० शाहाबाद) के एक धर्मनिष्ठ विद्वान् व्यक्ति थे। जिस जैन परिवार में उनका शुभ जन्म हुआ उस पर वीणापाणि सरस्वती तथा हरिवल्लभा लक्ष्मी की समान कृपा थी। एक ओर जमीन्दारी तथा वाणिज्य से प्रचुर धनागम था, तो दूसरी ओर स्वाध्याय और सेवा के सुयश से दिक्दिगन्त मदमत्त हो रहा था। लक्ष्मी की आराधना कभी साध्य नहीं बनी, साध्य तो मानव मंगल था; जिसके लिये अन्तिम क्षणों तक वे व्यग्र रहे। इस मानव-मंगल की साधना उन्होंने कई प्रकार से की, पर पत्रकार के रूप में उन्होंने जो अमूल्य सेवा की उसके लिए प्राणीमात्र चिर ऋणी रहेगा। इस छोटे से निबन्ध में उनके पत्रकार-जीवन पर यत्किंचित् प्रकाश डालना अभीष्ट है।

पत्रकार लोक-चक्षु और लोक-जिह्वा है। वह संसार के लिए देखता और संसार के लिए बोलता है; वह जो स्वाध्याय करता है वह भी परहित के लिए। वह ठीक मुख के समान है जिसपर समाज रूपी अंगों का पालन-पोषण और संगठन का दायित्व रहता है। वह भूत का विश्लेषक, वर्त्तमान का संस्थापक और भविष्य का अग्रदूत है। उसके विशाल हृदय में शान्ति का सरोवर, जिह्वा में अग्नि स्फुलिङ्ग और लेखनी में कठोर तीक्ष्णता होती है। देवकुमार बाबू इन्हीं गुणों से अलंकृत एक यशस्वी पत्रकार उस युग में हो चुके हैं, जब भारत की पत्रकारिता शैशवावस्था में थी। उन्होंने सन् १८९५ से जैन गजट नामक एक मासिक पत्र का सम्पादन शुरु किया जो आरा निवासी श्री राजेन्द्रकुमार द्वारा प्रकाशित तथा समय समय पर लखनऊ के विभिन्न प्रेसों (जैन प्रेस, लखनऊ प्रिन्टिङ्ग प्रेस, दामोदर प्रेस आदि) में मुद्रित हुआ करता था। इसका वार्षिक मूल्य २) तथा अंग्रेजी के एक पूरक अंश के साथ २॥) था। सरकार द्वारा यह रजिस्टर्ड पत्रिका थी।

जैसा कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है समस्त भारत के जैन मतावलम्बियों को एक सूत्र में संगठित करना और उनको उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करना इसका मुख्य ध्येय था। भर्तृहरि का निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोक इस पत्रिका का आदर्श वाक्य था—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥

आगे चलकर (सन् १९०६ के लगभग) इस पत्रिका के मुख पृष्ठ पर निम्नलिखित एक दोहा भी छपने लगा—

जैन गजट जग में करे धर्म सूर्य्य प्रकाश।
करै अविद्या व्यर्थ व्यय आदिक तमको नाश ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऊपर लिखित आदर्श वाक्यों से स्पष्ट विदित होता है कि उक्त पत्रिका का ध्येय जाति और धर्म की सेवा था। अब देखना यह है कि चरितनायक के सम्पादकत्व में इस ध्येय की पूर्ति किस हद तक हुई तथा उन्होंने अपने कार्य में नीतिमत्ता का स्तर कितना ऊँचा रक्खा।

किसी पत्रिका में सम्पादकीय के अतिरिक्त सम्पादक की अपना कहने योग्य और कोई वस्तु नहीं होती। परन्तु, प्रकारान्तर से, पत्रिका में प्रकाशित सभी सामग्री उसीकी होती है, कारण उन सभी चीजों के लिए वह पूर्ण उत्तरदायी है तथा उन चीजों को उसकी पूर्ण सहमति प्राप्त रहती है। पत्रिका में विषय का चयन, रचनाओं का संकलन, उनका क्रम, सजधज आदि सभी चीजों से संपादक की रुचि और आदर्श प्रियता का परिचय मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार नाम रूपात्मक जगत में आकाश का अस्तित्व सर्वत्र विद्यमान रहता है उसी प्रकार पत्रिका के सभी स्थलों में सम्पादक विद्यमान रहता है। इस मूल भूत सिद्धान्त को सामने रखकर आगे की पंक्तियों में यह स्पष्ट करने की चेष्टा की जायगी कि पत्रिका ने अपनी प्रकाशित सामग्री रूपी श्री से जैन सम्प्रदाय को कितना कीर्तिमान बनाया है।

देवकुमार बाबू ने जैन गजट के लिए जो सम्पादकीय लेख लिखे उनसे उनके व्यक्तित्व पर पूरा प्रकाश पड़ता है। उन सम्पादकीय लेखों का दिग्दर्शन करा देना यहाँ अभीष्ट जान पड़ता है, ताकि तत्कालीन समाज की गतिविधियों की जानकारी हो और यह भी मालूम हो जाय कि समाजिक आन्दोलन को दृढ़ करने के लिए उस मनस्वी ने कितना प्रयत्न किया था। जैन गजट के प्रकाशन काल में भारत में राष्ट्रीय नव चेतना का आविर्भाव हो चुका था, यद्यपि इसे पल्लवित तथा पुष्पित होना अभी बाकी था। इस राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठ भूमि को मजबूत बनाने के लिए गण्यमान्य नेताओं की दृष्टि सामाजिक सुधार पर लगी हुई थी। आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि के प्रयत्न इसी दिशा की ओर संकेत करते हैं। जैन सम्प्रदाय के विद्वान्, कवि, लेखक, साधु और मुनि आदि अपने मतावलम्बियों के अन्दर आये हुए सामाजिक कुप्रभाव को दूर कर धर्माचरण की ओर लगा देने का उन दिनों प्रयत्न करते थे। चरितनायक ने जून, १९०४ के एक सम्पादकीय में लिखा है:—

"जब हम यह विचार करते हैं कि हम 'जैनी' नाम करके प्रसिद्ध होते भी जैनी के करने योग्य कार्यों से क्यों अपने को सहस्रों कोस हटा पाते हैं तो हमारे खेद की सीमा नहीं रहती। वर्तमान काल के चाल व्यवहार की जिस समय प्राचीन शास्त्रोक्त चाल व्यवहार से तुलना की जाती है, तो हमें स्वप्न-सा प्रगट होता है। परन्तु जब उनकी उत्तमता पर लक्ष्य दिया जाता है और जब उन चाल व्यवहारों की कुछ कुछ झलक विदेशियों में दृष्टि पड़ती है तो यही कहना पड़ता है कि हम उन्हीं उत्तम प्राचीन वाक्यों को अपना धार्मिक व सामाजिक कानून मानते संते भी उस पर अमल करने के अतिरिक्त उसके विरोधी मार्गपर गमन कर अपने 'जैनी' नाम में बट्टा लगा रहे हैं"।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऊपर के उद्धरण से विदित होता है कि जैनी भाइयों के शास्त्रोक्त आचरण नहीं करने से विद्वान् सम्पादक ने कितनी चिन्ता प्रकट की है।

समाज सुधार विषयक प्रश्नों में शिक्षा का प्रश्न उन दिनों मुख्य था। बालिकाओं को कौन कहे बालकों की शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध नहीं था। किन्तु बालकों को अधिकाधिक शिक्षित बनाने की दिशा में प्रयत्न शुरु हो गया था। बालिकाओं की शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान अभी जाता ही नहीं था, उनमें यही मान्यता काम कर रही थी कि स्त्रियों को शिक्षित बना कर क्या होगा। जैन समाज से इस भाव को दूर करने के लिए देखिए उस मनस्वी ने क्या लिखा है:—

"स्त्री शिक्षा कितनी आवश्यक है, इसके प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि हमारे वे जैनी बालक जिन्होंने एक मात्र श्री पद्मपुराण ही का स्वाध्याय किया है धड़ल्ले के साथ कह उठेंगे कि स्त्रियाँ वैसे ही गुणों से भूषित होनी चाहिए जैसे कि पुरुष और प्राचीन काल में बालक बालिकाएँ सब ही विद्या के भंडार से भरपूर रहते थे। ... . गाड़ी बिना दो पहियों के नहीं चल सकती इसी तरह गृहस्थ धर्म सुशिक्षित स्त्री और सुशिक्षित पुरुष के संयोग के बिना नहीं चल सकता ...... बेमेल जोड़ी ने न मालूम कितनों के घरों को तबाह कर डाला ...... बेमेल जोड़ी ने भारत को गारद कर दिया। (जून १९०४ अंक १६)।

आपने जुलाई १९०४ के १७ वें अंक में मालवा के पं० शिवशंकर शर्मा द्वारा लिखित 'सत्य भाषण' शीर्षक एक निबंध प्रकाशित किया और उस पर अपना निम्न लिखित एक सम्पादकीय नोट लगाया, जिससे आपकी सत्यप्रियता का आभास तो मिलता ही है, साथ ही यह भी पता चलता है कि आप अपने विद्वान् लेखकों को ऐसे उपयोगी विषयों पर लिखने के लिए कितना प्रोत्साहित किया करते थे:—

"प्यारे भाइयों! सत्य वचन का अभ्यास नित्य करो। पंडितवर का उपरोक्त लेख सत्यता के सत्यरूप का सम्यक् दर्शक है, इसको विचार कर अपने हृदय का भूषण बनाओ, यही लौकिक और पारमार्थिक उन्नति का मुख्य हेतु है।"

भारतीय जीवन में तीर्थाटन पर बहुत अधिक जोर दिया गया है। खासकर जैन मतावलम्बी इसे धर्माचरण का एक मुख्य अंग मानते हैं। पर तीर्थक्षेत्रों में यात्रियों को अनेकानेक कष्ट सहने पड़ते हैं। उस समय अखिल भारतीय जैन महासभा ने तीर्थक्षेत्रों की देखभाल के लिए एक समिति संघटित की थी। इस समिति के कुप्रबंध से तीर्थक्षेत्रों की दशा अच्छी नहीं थी। परदुःख कातर सम्पादक का हृदय विगलित हो उठा। उन्होंने जुलाई १९०४ के १८ वें अंक में जैन सम्प्रदाय का ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा:—"पाठक गण! जिस समय हमारा मन अपनी वेगवती के बहाव में कभी तीर्थक्षेत्रों की व्यवस्था से टकराता है तो थोड़ी देर के लिए वहीं रुक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाता है आज भी वैसा ही मामला है। एक ओर तीर्थक्षेत्रों की पवित्रता और पूज्यता का भाव आकर चित्त को प्रफुल्लित करता है। दूसरी ओर उनकी वर्तमान दशा का कुप्रबन्ध दर्शन दे चित्त को खेदित करता है। खेदित ही नहीं किन्तु थोड़ी देर के लिए आकुल व्याकुल कर देता है।" इसी सम्पादकीय लेख में आपने आगे चल कर तीर्थक्षेत्रों के कुप्रबन्ध को दूर करने के संबन्ध में अपना रचनात्मक विचार स्पष्ट ढंग से प्रकट किया है।

यद्यपि आप एक सम्प्रदाय विशेष का हितचिन्तन किया करते थे पर अन्य सम्प्रदायों के प्रति भी आप बड़े उदार थे। हिन्दुओं में वेद वाक्य सा प्रचलित 'न गच्छेत् जैन मन्दिरम्' की आपने अगस्त १६०४ के २० वें अंक में आलोचना लिखी थी जो निम्न प्रकार है :—

"भाइयों ! इस लोकोक्ति (द्वेषी जनों के वचन) ने हमारे भारतवर्ष का कितना अलाभ किया है व हमारे इस पवित्र जैनधर्म को कैसा तुच्छ जगत के मानवों के सामने दिखला दिया है कि हिन्दूमत का बच्चे से बूढ़ा तक जैनमत को न मालूम कितनी घृणा की दृष्टि से देखता है कि मसजिदों में जाने में हर्ज नहीं, ताजियों के साथ मर्सिये पढ़ने में हर्ज नहीं, दिहली, कुँआ, चाक पूजने में हर्ज नहीं पर जैनों के मन्दिरों में जाने से इतना हर्ज है कि कोई भूल से भी कदम नहीं रखता। चाहे हमारे जैनी भाई द्वेष न करके अपने हिन्दू भाइयों की सत्यनारायण की कथा में शामिल हों या देवी जी के भजनादि सुनने में कान लगाए बैठे रहें। पर हमारे हिन्दू भाई इसी उपरोक्त षड्यन्त (न गच्छेत्...) को याद कर कभी भूल से भी जैनमत के सत्य उपदेश को नहीं सुनते।"

इस आलोचना में कीचड़ उछालने की प्रवृत्ति नहीं है, न कहने का ढंग ही टेढ़ामेढ़ा या व्यंगात्मक है। जो वास्तविकता है उसे स्पष्ट शब्दों में सरलता के साथ रख दिया गया है। यह शैली आलोचक की शिष्टता और सौम्यता की परिचायक है। समालोचना के खरापन में भी विनय का पुट है।

मैं शिष्ट समालोचना का एक दूसरा उदाहरण दूँगा जो अत्यन्त रोचक है। वैङ्कटेश्वर समाचार ने १५ जून, १६०६ के अंक में "साहित्य और विज्ञान" शीर्षक लेख में यह प्रकाशित किया कि यदि जैनियों के कथनानुसार रावण जैनी रहा हो और मेघनाद कुम्भकरण उनके धर्म-वाले रहे हों तो नहीं समझ सकते कि जैनी भाई उसके पापी, सुरापायी, गौ-ब्राह्मण-सन्तापी और हिंसा-प्रिय होने के कलङ्क को किन प्रमाणों से दूर करेंगे। यह भी प्रसिद्ध है कि रावण और उसके वंशवाले शैव थे। शिव की असामान्य पूजा करके रावण ने वर प्राप्त किया था, क्या जैनी भाई यह भी कबूल करेंगे कि उस समय के जैनी ब्रह्मा, शिव आदि की पूजा भी किया करते थे।'

इस आक्षेप के उत्तर में सम्पादक जी ने अपनी एक सम्पादकीय टिप्पणी (जुलाई, १६०६ अंक २७) में लिखा कि हम सहयोगी से पूछते हैं कि उसने रावण आदि का सुरापायी, गौ-ब्राह्मण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सन्तापी और हिंसाप्रिय एवं शैव होना किस जैनग्रन्थ में देखा है। यदि वह अपने पुराण के अनुसार कह रहा है"'तो इसका उत्तरदायित्व हम पर नहीं है। हां इतना अवश्य पूछेंगे कि क्या शैव लोग गो-ब्राह्मण सन्तापी हुआ करते हैं?" (मीठी चुटकी!) अन्त में पुराणों के पचड़े में नहीं पड़ने की प्रार्थना करते हुए वे लिखते हैं कि "अब वाद विवाद का समय गया, आजकल तो परस्पर वात्सल्य भाव की आवश्यकता है। इन्हीं वाद विवादों ने हिन्दू और जैनों में ऐसा वैमनस्य डाल दिया था कि एक दूसरे का मुंह भी देखना नहीं चाहते हैं। उस पुराने वैर-वृक्ष की लता अब सूख चली है उसे फिर लहलहाने की क्या आवश्यकता है। आइये हम-आप एक अहिंसा ही का उद्देश्य लेकर मिल जुल कर काम करें और भारतवर्ष से एकता की हवा से यहाँ के पुराने फूट तथा वैर वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर फेंक दें।"

किसीके कटु आक्षेप से देवकुमार बाबू का कोमल चित्त तिलमिला नहीं जाता था। ऐसे अवसर पर बड़ी शान्ति और धीरता से वे काम लेते थे। समालोचना के संबन्ध में उनकी बड़ी विशद धारणा थी। 'समालोचक बनना सहज नहीं है।' शीर्षक लेख में स्वयं लिखते हैं— "आजकल जिसे देखिए वही समालोचक बनकर डाक्टर जौनसन की कुर्सी पर बैठना चाहता है, परन्तु उसकी आशा दुराशा मात्र हो जाती है क्योंकि यथार्थ समालोचक होना बड़ा कठिन है। आजकल के समालोचक समालोचना के पर्दे में अपने दिल का बोखार तथा पुरानी गड़ी हुई अदावत निकालते हैं जिसका फल विपरीत होता है। समालोचना करते समय मर्यादा उल्लंघन करके अपने संकीर्ण हृदय का परिचय देना तथा अपनी विद्या के गर्व में आकर लेखनी की तीव्र छटा प्रदर्शित करना समालोचना का श्राद्ध करना है। .... समालोचक का काम केवल दोष दिखलाने ही का नहीं है, वरन् वह गुणों को भी प्रकट करता है।"

देवकुमार बाबू 'जैन गजट' के द्वारा भारतीय राष्ट्रीय जीवन पर भी यथा समय प्रकाश डालते थे, जिससे उनका देश-प्रेम परिलक्षित होता है। कलकत्ते की एक लिपि विस्तार परिषद् की वार्षिक रिपोर्ट पर सन्तोष प्रकट करते हुए तथा उसकी सहायता के लिए हिन्दी प्रेमियों से अपील करते हुए आपने लिखा था—"देशोन्नति के लिए तीन बातों का होना परमावश्यक है एक तो देश भर का एक धर्म होना चाहिए दूसरे देश भर की एक भाषा तथा लिपि होनी चाहिए, तीसरी बात देशभर में एक राज्य होना चाहिए। ......एक भाषा और एक लिपि प्रचार के विषय में यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि भारतवर्ष में राष्ट्रीयता का मौर देव नागरी अक्षर तथा हिन्दी भाषा ही के मस्तक पर बान्धा जा सकता है। अतः इसीके प्रचार में हम भारतवासियों को उद्योग करना चाहिए।" अभी हाल तक जो विषय इतना विवाद ग्रस्त बना हुआ था उस पर बहुत पहले ही आप का यह सुलझा विचार सर्वथा श्लाघनीय है तथा आपकी दूरदर्शिता का परिचायक है।

सित ,र १६०४ के २२ वें अंक में जैन जाति की संख्या का ह्रास देखकर आपने ह्रास का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कारण ढूढ़ने के लिए जनगणना की आवश्यकता पर जोर दिया था। आपने लिखा था कि सन् १६०१ की मदुर्मशुमारी में जैनियों की संख्या केवल १३½ लाख रह गई है जब कि १८६१ में १४ लाख थी। आप यह जानना चाहते थे कि इस कमी का कारण क्या है। कुछ लोग कहते थे कि अनेकानेक जैन प्लेग से मर गये, कुछ लोगों ने अन्य धर्म ग्रहण कर लिया, गरीबों की शादी ही नहीं होती इत्यादि। पर वास्तविक कारण जानने के लिए आपने यह सुझाव पेश किया कि प्रत्येक स्थान में समुचित ढंग से जनगणना हो, पूरी जानकारी गाँव के वृद्ध पुरुषों से पूछ कर लिखी जाय और उसकी रिपोर्ट जैन गजट के सम्पादक के पास भेजी जाय; तब ह्रास के कारण का पता लगाकर उसके निराकरण का उद्योग किया जायगा।

अखिल भारतीय पैमाने पर इतने बड़े कार्य को अपने हाथ में लेना असाधारण पराक्रम का परिचायक है।

चरितनायक के अग्रलेखों से जो उद्धरण ऊपर दिये गये हैं उनसे पाठकों को भलीभांति उनके व्यक्तित्व तथा मिशन के संबंध में पता चल गया होगा। अब उनके सम्पादकत्व में प्रकाशित सामग्रियों के संबंध में भी कुछ कह देना आवश्यक जान पड़ता है।

'जैन गजट' की फाइलों को देखने से जान पड़ता है कि सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन पर अधिक से अधिक लेख, कविता तथा वार्त्तालाप रहा करते थे। जिस प्रकार रोग ग्रस्त शरीर स्वास्थ्य की प्राप्ति नहीं कर सकता उसी प्रकार कुटेव ग्रस्त समाज भी उत्कर्ष की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। चरितनायक जैसे लोक हितैषी के लिए यह स्वाभाविक ही था कि सामाजिक सुधारों पर ध्यान देते। जुआ, विषयानुराग, अभक्ष्य सेवन, पारस्परिक फूट, शराबखोरी, बेमेल विवाह, परदा प्रथा आदि दूषणों पर प्रत्येक अंक में पाण्डित्य-पूर्ण लेख भरे रहते थे जिनका उद्देश्य था लोगों को इन दूषणों से अलग कर सच्चरित्र बनाना।

कुछ स्वास्थ्य विषयक भी लेख रहा करते थे, जिनमें जैन बालकों के गिरते हुए स्वास्थ्य पर चिन्ता प्रकट की जाती तथा कसरत आदि पर जोर दिया जाता था। जैन-जगत लक्ष्मी का अनुग्रह प्राप्त कर इह लौकिक सुख की सामग्री एकत्र करने की तल्लीनता में मोक्षको जब भूल जाता तब जैन गजट के अनेकानेक लेख उसे परलोक की याद दिलाते थे। वेश्यागमन की निन्दा में इतनी सुन्दर सुन्दर रचनाएँ प्रकाशित होती थीं कि उन्हें पढ़कर कितनाही बड़ा वेश्यागामी अपनी भूल पर सोचना अवश्य आरम्भ कर देगा। मैं नीचे एक कवित्त उद्धृत करता हूँ जिसे पाठक स्वयं देखें—

काया से काम जात, गाँठ हूं से दाम जात नारीहू से नेह जात,
रूप जात रंग से।
उत्तम सब कर्मजात कुल के सब धर्म जात गुरुजन से शर्म जात,
आपनि मति भंग से॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रूप रंग दोऊ जात शास्त्र से प्रतीत जात प्रभुजी से नेह जात
बदन की उमंग से ॥
जप तप की आश जात सुरपुर को वास जात, भूषण
विलास जात वेश्या के प्रसंग से ॥

इटावा निवासी श्री चन्द्रसेन जैन रचित यह कवित्त 'जैन गजट' के १६ दिसम्बर, १६०३, अंक ४ में प्रकाशित हुआ था।

इसी प्रकार ऐसे भी लेख प्रकाशित होते थे जिनमें जैनियों के तमाखू पीने पर अत्यन्त क्षोभ प्रकट किया जाता था। एतद्विषयक कविताएँ भी प्रकाशित होती थीं, जिनके द्वारा साधारण जनों के हृदय पटल पर यह अंकित किया जाता था कि तमाखू पीना सर्वथा निन्दनीय है। उदाहरण स्वरूप एक कवित्त नीचे दिया जाता है।

आज के जमाने में चिलम एक बड़ी बात छोटे अरु मोटे दम सब
ही लगाते हैं।
बामन औ बनियां क्षत्री डोम की न पूछे जाति, भरी देख चिलम
तापै जाय झुक जाते हैं ॥
जैसे जीव जगत बीच ओठ (झूठन) को पसारें हाथ तसे ले
ठीकरे (चिलम) को मुह से लगाते हैं ॥
कहत कवि आखों देखी झूठ जनि मानौ मित्र चिलम चटोरे
ओठ (जूठन) सबही की खाते हैं ॥

सामाजिक लेखों के अतिरिक्त धर्म विषयक लेखों की संख्या भी प्रचुर मात्रा में रहती थी। ऐसे लेखों में उन लेखों का बड़ा महत्व है जो दान, तप, व्रत, संयम, श्रद्धा, भक्ति, सेवा और सत्यभाषण के भाव को हृदयंगम कराने के उद्देश्य से लिखे जाते थे।

पुरातत्त्व और ऐतिहासिक महत्त्व के भी लेख यदा कदा प्रकाशित होते थे। इनमें मारवाड़ के बाली परगने के बीजापुर गाँव में संवत् ६६६ का लिखा हुआ राष्ट्रकूट मम्मट राजा का लेख जो जैन गजट १६०३ अंक ६ में प्रकाशित हुआ था, विशेष स्थान रखता है। विक्रमादित्य और शालिवाहन के संवत् और शक पर विचार करने के लिए ऐतिहासिक लेख भी एक जगह पाया गया है।

कभी कभी दार्शनिक लेख भी रोचक और बोधगम्य भाषा में लिखे हुए मिलते थे। इनका विषय रहता था 'सृष्टि और इसका कर्त्ता' आवागमन आदि।

जैन-जगत की एक मुख्य पत्रिका होने के कारण उस जगत के सभी ताजे समाचार उसमें प्रकाशित होते थे। जैन बन्धुओं से अपील करने तथा जातीय स्वार्थ के सम्बन्ध में सुझाव

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पेश करने के लिये पत्रिका एक सुगम साधन थी। जैन हितैषिणी संस्थाओं के हिसाब-किताब तथा अन्य वार्षिक विवरण समय समय पर प्रकाशित होते रहते थे, जिससे प्रत्येक जैन भाई अपनी जातीय गतिविधि से पूर्ण परिचित रहता था। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक स्वार्थ के प्रमुख समाचार भी प्रकाशित होते रहते थे। यहाँ मैं दो एक ऐसे समाचारों के उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता—

बेतार का तार

सिगनर मैरकोनी ने केप ब्रटन और कार्नवाल के बीच में बेतार का तार लगाया है, कुछ खबरें आ जा चुकी हैं। इनमें एक तार अर्ल मिराटों ने बादशाह एडवर्ड को दिया था।

हिन्दी महाराजा के घर

राज राजेश्वर सप्तम एडवर्ड हिन्दी भाषा सीख रहे हैं—उनकी एक बहन ने हिन्दी में अच्छी योग्यता हासिल की है।

'जैन गजट' का युग राष्ट्रीय नवचेतना का युग था। स्वदेशी आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। राष्ट्रभाषा का प्रश्न भी छिड़ चुका था। इसलिए राष्ट्रीय भाव को पुष्ट करने के लिए भी उत्तमोत्तम रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। दो एक उदाहरण देखें—

[एक हिन्दी प्रेमी जयपुर नरेश से हिन्दी-प्रचार के लिए निवेदन करता है]

कवित्त

जैपुर नरेश माधवेश भूपति सों मुकुलित कर कमल यह
अर्जी हमारी है।
अभय दान दीजै शरण हिन्दी जबान लीजे प्रभु हिन्दुमत
धर्म कर्म यही रखवारी है॥
हिन्दी पढकोरे रहै संपत अन्य भाषी चहै राज सभा
आदर बिन होत यह ख्वारी है॥
हिन्दू पति तोय जान भानुकुल शेषर मान हिन्दी सन्मान
हेतु चहै करुणा तिहारी है॥

स्वदेशी वस्तु प्रचार पर एक लावनी का कुछ अंश देखिये—

देशोन्नति किस प्रकार होवे जब इस पर किया गया विचार।
निश्चय हुआ बड़ा जरिया है देशी चीजों का प्रचार॥
मुफलिस और तंग दस्तों को खुशहाल बनाना चाहते हो।
बड़े दुष्ट रास्ते को छोड़ सतमार्ग चलाना चाहते हो॥
तो करलो यह अहद देश की चीज खरीदेंगे हरबार।
निश्चय हुआ बड़ा जरिया है देशी चीजों का प्रचार॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इन समाचारों के अतिरिक्त कुछ फुटकर स्थानीय समाचार भी यथा स्थान छापे जाते, जिनमें अधिकतर आरा नागरी प्रचारिणी सभा, आरा जैन हितकारिणी सभा आदि संस्थाओं के समाचार तथा कार्यवाही की रिपोर्ट छपा करती थी।

अबतक 'जैन गजट' के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया उससे स्पष्ट है कि स्व० बाबू देवकुमार जैन ने इस पत्रिका के द्वारा जो सेवा की है वह उनके नाम और यश को बनाये रखने के लिए पर्याप्त है। जहाँ तक पत्रकारिता का सम्बन्ध है, हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में उनका एक उल्लेखनीय स्थान है। जिस जमाने में हिन्दी के नाम पर पढ़े लिखे लोग नाक भौं सिकोड़ते थे उस जमाने में हिन्दी में गद्य और पद्य से सुसज्जित ऐसा सुन्दर पत्र निकालना कोई साधारण बात नहीं थी। 'जैन गजट' की कोई भी प्रति हाथ में लीजिये, जान पड़ता है यह उस युग का दर्पण है। क्या धार्मिक, क्या साहित्यिक और क्या सामाजिक सभी प्रकार की समस्याएँ और वहीं उनके समाधान की ओर संकेत भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। इस पत्रिका के सम्बन्ध में रतलाम निवासी श्री दरयाव सिंह हीराचन्द जैन के उद्गार नीचे उद्धृत कर मैं इस लेख को समाप्त कर देना चाहता हूँ।

"यह जैन गजट क्या है? क्या अन्य अन्य समाचार पत्रों की नाईं यह भी अखबार है। क्या यह पत्र किसी एक आदमी द्वारा अपने स्वार्थ साधन निमित्त निकाला जाता है? नहीं! नहीं; भाइयो! यह हम सब भाइयों को मोह निद्रा से जगाकर धर्म के सन्मुख करनेवाला महोपदेशक है यह एक वही परम मित्र है जो अपने पूरे भोजन को भी न पाकर पेट बाँधे हुए परोपकार में तत्पर रहता है। यह वही निधि है जिसके द्वारा इच्छित पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है। यह एक जैन जाति का वह महत्पुरुष है जो अपने वात्सल्य भाव द्वारा जाति भर में एकता फैलाने में उद्यत रहता है। यह उसी उत्तम मार्ग से सहानुभूति रखनेवाला है जो मोक्ष मार्ग का सहकारी है।"

इस प्रशस्ति के प्रत्येक वर्ण से उस महान् व्यक्ति की प्रतिभा का परिचय मिलता है। आज वह हमारे बीच नहीं है पर उसकी अमल कीर्तिचन्द्रिका हमारे वर्त्तमान परिताप के शमन के लिए पर्याप्त है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अभिनन्दनीय का अभिनन्दन !

[रचयिता—श्रीयुत् बा० वीरेन्द्र प्रसाद जैन अलीगंज]

संसृति के रङ्ग-मञ्च पर हैं,
होते अभिनव अभिनय अनन्त;
प्रतिपल अभिनय होता रहता,
जन बनते खल तो कभी सन्त ।

प्रतिप्राणी अभिनय दिखलाता,
अपने-अपने कर्म्मानुसार;
उसकी स्मृति अवशेष, किन्तु,
रह जाती, जो रहता उदार;

अथवा निज-पर कल्याण हेतु,
जो करता अभिनय आकर्षक;
जो ज्ञान-सत्य को फैलाने,
आता भूरर बन अभिनायक;

उसका जीवन-नाटक रहता—
प्रति मानव-मानस पर अंकित;
वह मरने पर जीवित रहता,
करता सबको आश्चर्य-चकित ।

भारती या कि वह सरस्वती,
करती उसका है यशोगान;
इस भाँति युगों तक है करती-
उसकी सुकीर्ति का वह बखान ।

इन युग-पुरुषों की श्रेणी में,
अबतक अगणित हैं सुजन हुए;
इन महा मानवों में ही तो,
हैं विविध क्षेत्र के रत्न हुए ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इन रत्नों में ही एक रत्न—
थे देवकुमार सुजन सच्चे;
जिनके जीवन से ले सकते,
शिक्षोत्साह अल्हड़ बच्चे।

उनकी स्मृति भी आज हमें,
देता उनका 'सिद्धान्त-भवन'
इस ज्ञान भवन के निर्माता,
थे देव तुल्य वे ही सज्जन।

उनके 'सिद्धान्त-भवन' से है,
'भास्कर' की किरण सदा आती;
जो जन-जन के अन्तस् में है,
सत्-ज्ञान उजाला भर जाती।

उनके सिद्धान्तों का 'भास्कर'—
निकले युग-युग तक भासमान,
जिसके प्रकाश से मुखरित हो,
सम्पूर्ण धरा और आसमान।

अभिनन्दनीय का अभिनंदन,
करता, करना चाहिए सत्य;
स्मारक सौम्य रहेगा ही,
'सिद्धान्त-भवन' है अमर कृत्य।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री बा० देवकुमार : जीवन और विचारधारा

[ले०—श्री प्रो० चन्द्रसेन कुमार जैन, एम० ए०]

भारतीय इतिहास का वह महान् विप्लव, दो संस्कृतियों का वह भीषण संघर्ष, दो युगों को पृथक् करने वाला वह क्रान्तिकारी बवण्डर अपनी रोमाञ्चकारी स्मृति छोड़कर शान्त हो चुका था। देश की धमनियों से प्रवाहित रक्त के फुहारे कुछ काले धब्बे बन कर सूख चुके थे। पीछे छूट चुके थे गौरव और समृद्धि के चमकीले दिवस। पश्चिम ने पूर्व पर विजय प्राप्त की। पूर्व ने घुटने टेक कर इसे ईश्वरीय वरदान के रूप में स्वीकार कर लिया। मिथ्यादंभ, आत्म-विस्मरण, शोषण और विलास का नव-शासन प्रारंभ हो गया।

अविद्या, अहंकार, आडंबर और अनाचार के इस देशव्यापी साम्राज्य में जैन जाति ही किस प्रकार अछूती बच सकती थी। निःकषाय मुनियों से वंचित और अल्पज्ञ पंडितों से प्रभावित इस असंगठित समाज के प्रत्येक कार्य्य अपनी ही जाति और धर्म को मिटा देने के लिये कृतसंकल्प हो रहे थे। यश-प्राप्ति की लोलुप लालसा ने इसे परिग्रह के भयंकर दलदल में फँसा दिया था। समाज का अधिकांश भाग धर्म के मूल सिद्धान्तों से अनभिज्ञ रह कर कुछ विधि-विधानों के मिथ्या प्रदर्शन द्वारा आत्मकल्याण की आशा में मग्न था। इधर अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित इने गिने नवयुवक अपनी संस्कृति से आँखे मोड़कर विदेशी आचार विचार ही नहीं ग्रहण कर रहे थे, प्राचीन धार्मिक भावना का उपहास कर जातीय गौरव को भी नष्ट कर रहे थे। लक्ष्मी का संकलन और प्रदर्शन ही इस जाति की विशेषता बन गया था, जिसका सारा भाग कुसंस्कारों में व्यय होता था। धार्मिक शिक्षा के लिए न तो कोई व्यक्तिगत रुचि थी और न समाज की ओर से कोई संगठित आयोजन ही सफल होता था। बही-खाता और चिट्ठी-पत्री की योग्यता इस जाति की शिक्षा की सीमा रेखा थी।

शिक्षा और कला-कौशल से विहीन नारीवर्ग मिथ्यादृष्टि, पारिवारिक कलह और कुरीतियों का केन्द्र बन गया था। इसी वातावरण में पल कर भावी सन्तति अदूरदर्शी, निकम्मी और भौतिक-वादी बनती जा रही थी। वस्त्राभूषण का अनवरत संग्रह इनके जीवन का महानतम उद्देश्य था। धार्मिक आचरण भी उस लक्ष्य के साधन मात्र थे। बाल-विवाह की प्रथा ने समाज में विधवाओं का एक विशाल वर्ग उत्पन्न कर दिया था, जिनका जीवन समाज के स्वनामधन्य ठेकेदारों के स्वार्थ साधन के कारण नारकीय हो रहा था। अन्य धर्मावलम्बियों की कुत्सित रीतियाँ इस समाज में भी घर कर चुकी थीं।

समाज, सभाओं, महामण्डलों और समितियों की भरमार थी, परन्तु योग्य नेता के अभाव में इनका क्षणिक जातीय आवेश केवल वार्षिक अधिवेशनों की वक्तृता से आगे नहीं बढ़ पाता था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पण्डित दल और बाबूदल अथवा नरमदल और गरमदल की पारस्परिक नोकझोंक से विवाद का प्रसार मात्र हो रहा था, समस्याओं के समाधान की कोई रचनात्मक चेष्टा नहीं प्रकट होती थी। स्वार्थमयी व्यापारिक नीति के कारण यह समाज अन्य हिन्दुओं की घृणा का पात्र बन गया था। युग के अनुकूल अपनी संस्कृति की मौलिक विशेषताओं के द्वारा मानवता के विकास में सहायक बनने का उत्साह एकदम लुप्त हो चुका था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में त्याग की अपेक्षा भोगवाद की प्रधानता ही दृष्टिगोचर होती थी।

कोयले की खान में हीरे मिलते हैं। अभिशप्त जनसमाज पुरुषरत्न उत्पन्न करता है। इस सत्य का ज्वलन्त प्रमाण था पतनोन्मुख जैन जाति में आरा नगर के श्रीयुत पं० प्रभुदास जैन का स्मरणीय घराना। संस्कृत साहित्य की अगाध विद्वत्ता, गंभीर शास्त्राध्ययन, उदार स्वभाव, धर्म-निष्ठा और व्रत-पालन की दृढ़ता से अनुप्राणित प्रभुदास जी का उज्ज्वल व्यक्तित्व इस जाति का मानों पुंजीभूत कीर्तिस्तंभ था। उनकी जीवन-साधना थी देवालयों और धर्मशालाओं के निर्माण द्वारा धर्मवृद्धि। दीन दुखियों की सेवा, विद्यार्थियों की सहायता और धार्मिक अनुष्ठान इनकी लक्ष्मी के शृंगार थे। आज भी काशी में भदैनी घाट पर जिनमन्दिर और धर्मशाला, भगवान् चन्द्रप्रभु स्वामी के जन्मस्थान चन्द्रपुरी में निर्मित मन्दिर और स्वयं आरा में प्रतिष्ठित जिनालय इनकी उत्साहपूर्ण जिनभक्ति के सजीव चित्र हैं। चालीस वर्षों तक अनवरत एकाहार का व्रत पालन कर अपनी दृढ़निष्ठा का परिचय देनेवाला जैन समाज का यह उज्ज्वल नक्षत्र चौसठ वर्ष की आयु में परलोक का यात्री बन गया।

फूल अपनी सुरभि बिखेर कर सूख गया, परन्तु समाज उसके फल से वंचित न रहा। योग्य पिता के योग्य पुत्र श्री चन्द्रकुमार जैन ने पिता के चरण-चिन्हों को अपने जीवन का पथप्रदर्शक माना। कौशाम्बी में जैन मन्दिर का निर्माण कर इन्होंने भी पिता के कार्य्य को अग्रसर किया। अभी समाज इस अधकचरे फल के मिष्ट स्वाद से तृप्त होने की आशा ही कर रहा था कि काल-वात्या ने इसे असमय में ही झकझोर कर वृन्त से अलग कर दिया। चौतीस वर्ष की आयु में ही सर्व-गुण-संपन्न होनहार नवयुवक ने अपने परिवार और समाज दोनों को अन्धकार में भटकने के लिए छोड़कर पितृलोक का अनुसरण किया। इस विमल ज्योति के शेष चिन्ह रह गये थे दो नन्हें से रक्ताभ जिनका भविष्य कभी आशा की मुस्कुराहट प्रकट करता तो कभी निराशा के काजल में छिपने की चेष्टा।

नव बसन्त पूर्ण यौवन को प्राप्त होकर चतुर्दिक् उल्लास और मादकता बिखेर रहा था। उसके साम्राज्य में प्रकृति अपने समस्त रंगीन वास्त्राभूषणों से सुसज्जित हो झूम रही थी। नवलतिकाओं को सहारा देने वाले वृक्ष रक्तिम किसलयों की सुरभि से वायु को बोझिल कर अपने कायाकल्प का प्रमाण दे रहे थे। ऐसे समय में जब भारत का कोना कोना पतझड़ की उदासीनता को दूर कर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नवजागरण की जीवन शक्ति से अनुप्राणित हो रहा था, उमंगहीन निष्क्रिय जैन जाति मरघट की शान्ति अपनाये हुए थी। भौतिक स्वार्थपरता की काई से आच्छादित नीरव सरोवर में जातीय उत्थान की एक लहर भी नहीं देखी जा सकती थी।

क्रान्ति के अग्रदूत भगवान् महावीर के इन मृतप्राय: उपासकों में प्रगति की चेतना विस्फुरित करने के लिए स्वयं एक स्वर्गीय विभूति को मानव-शरीर धारण करना पड़ा। संवत् १९३३ के चैत्र मास में जब स्वच्छ नीलम के पर्दे पर चन्द्रमा अपनी आठवीं कला का शुभ्र प्रकाश फैला रहा था, एक दिव्य ज्योति आरा के उसी प्रसिद्ध घराने में अवतरित हुई जो पहले से ही इसे धारण करने के लिए पवित्र बनाया जा चुका था। नवीन शिशु का प्रतिभाशाली मुखमण्डल और उसका अलौकिक सौन्दर्य इस तथ्य को सिद्ध कर रहा था कि एक उजड़े हुए समाज को बसाने के लिए किसी देवकुमार को कष्ट करना पड़ा है। अनुभवी पिता ने अपने पुत्र की योग्यता के अनुकूल ही उसका नामकरण किया।

इस सुन्दर बालक ने अभी जीवन के दस बसन्त भी नहीं देखे थे कि पिता ने उसे जीवन-यज्ञ की वेदी पर अकेला छोड़ दिया। साथ में रोने के लिए था एक नन्हां सा भाई धर्म कुमार, जिसने अभी तक यह भी नहीं जाना था कि जीवन और मृत्यु में क्या अन्तर है। जब इस परिवार से सहानुभूति रखने वाले इन वियुक्त बालकों के भविष्य का अनुमान करते, उस समय ये अपनी बाल सुलभ मुस्कुराहट से उस अंधकारमय भविष्य में मानों आलोक की रेखा खींच देते। कठिन अवसरों पर भी धैर्य धारण करने की कला सीखने का सुयोग इन्हें बचपन में ही मिल गया। भविष्य का निर्माण माँ की गोद में ही काल की करालता पर मुस्कुराने लगा।

दस वर्ष के किशोर देवकुमार ने पैतृक उत्तराधिकार में एक बड़ी जमीन्दारी के साथ अपने पूर्वजों की उदार दानशीलता, धार्मिक उत्साह और जातीय गौरव की भावना को भी अपना लिया। अप्राप्तवय होने के कारण इनकी जमीन्दारी राजकीय कोर्ट आव् वार्ड्स के अधिकार में चली गयी। बालक देवकुमार की शिक्षा-दीक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं हो सका। तीव्रबुद्धि, परिश्रम; अध्यवसाय और धैर्य के बल पर इन्होंने आइ० ए० तक कालेज की शिक्षा प्राप्त कर ली। इसके पूर्व ही सत्रह वर्ष की कोमल वय में इनके हाथ पीले किये जा चुके थे। इनकी पत्नी श्री अनूपमाला देवी स्थानीय एक प्रतिष्ठित जैन-परिवार की सुशील कन्या थीं, जिन्होंने प्रत्येक अवस्था में अपने जीवन-सहचर को उत्साह और सहारा देते रहना ही अपना कर्त्तव्य समझा और आज भी उन्हीं के पथ का अनुसरण कर रही हैं।

महत्वाकांक्षी युवक कुमार की हार्दिक इच्छा विश्वविद्यालय की उच्चतम शिक्षा ग्रहण करने की थी, परन्तु पारिवारिक परिस्थिति ने इनकी अग्रगति में बाधा डाल दी। जिलापति के आदेशानुसार इन्हें अपने नन्हें सुकुमार कन्धों पर जमीन्दारी और परिवार की देखरेख का भारी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बोझ सँभालना पड़ा। कुछ वर्ष पश्चात् राज्य ने आनरेरी मैजिस्ट्रेट का सम्माननीय पद प्रदान कर इनकी योग्यता प्रमाणित की ! कई वर्षों तक इस पद का सुयोग्य संचालन कर इन्होंने भी राज्य कार्य में सहायता प्रदान की। अखिल भारतीय दि० जैन महासभा के दसवें अधिवेशन में प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्य तथा बारहवें अधिवेशन में सभापति के उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर मनोनीत हो इन्होंने समाज की नौका को खेने का भी गुरुतर कार्य्य संपादन किया। सन् १६०२ से जीवन पर्य्यन्त ये तीर्थक्षेत्र कमेटी के सभासद बने रहे। काशी के स्याद्वाद विद्यालय का मन्त्रित्व पद भी आरम्भ में इन्होंने संभाला। इस प्रकार व्यक्तिगत और सामाजिक क्षेत्र के विभिन्न महत्वपूर्ण कार्य्यों में अनवरत संलग्न रहने पर भी इनकी ज्ञानपिपासा सदैव जाग्रत रही। सारे लौकिक झंझटों के बीच भी उत्साही देवकुमार आध्यात्मिक और साहित्यिक अध्ययन के द्वारा आत्मविकास करने का समय निकाल ही लेते थे।

अचल पाषाणखण्डों से टकरा कर अग्रवाहिनी सरिता प्रबल वेग से उछलती है। सांसारिक विघ्न-बाधाएँ किसी कमठ जीवन में द्विगुणित उत्साह भरने वाली प्रेरणा-शक्ति बन जाती हैं। व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष ने कुमार जी को समस्त जैन-जाति की तन्द्रा भंग करने के लिए प्रोत्साहित किया। जातीय गौरव की पताका लेकर यह अमर सेनानी अपने समाज के विद्वानों के प्रति विह्वल होकर मार्मिक पुकार करता है :—

"हे हमारे परोपकारियों! हे हमारे भाइयों! हे हमारे जैन जाति की अवनति देखकर आँसू बहानेवालो! उठो, प्रमाद-निद्रा छोड़ो, शोककंटक का मुख तोड़ो और धार्मिक प्रीति में भरकर मज़हबी जोश का डंका बजाओ।"

कौन हैं वे शत्रु जो हमारी जाति को अशेषचिह्न कर देने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं ?

"देखो २ अविद्या राक्षसी इसको घसीटे लिये जाती है। मिथ्यात्व राक्षस इसको इधर ढकेल रहा है। फूट चुड़ैल बीच में सहारा देकर अवनति के गढ़े में फेंक रही है। प्यारे भाइयों अब कोई कसर है ?"

इनका दृढ़ विश्वास था कि ज्ञान के प्रचार बिना किसी भी जाति का उत्थान असंभव है। 'जैन गजट' के संपादकीय वक्तव्यों के द्वारा ये सदैव जैनियों को सभी प्रकार की शिक्षा और कला-कौशल में पारंगत होने की प्रेरणा देते रहे। लौकिक और पारमार्थिक सभी दृष्टियों से विद्या ग्रहण के पक्षपाती होने पर भी विशुद्ध ज्ञान की परिभाषा देते हुए ये कहते हैं :—

"जो ज्ञान विषयानल का वर्द्धक हो, अन्य जीवों के विकास में बाधक हो, प्राणी को मान पर्वत पर आरोहित करता हो, जो अपने आपको विस्मरण कराकर पर्वत की तलहटी में में पटक देने वाला हो, वह ज्ञान किसी प्रकार अज्ञान से कम नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नवजागरण की जीवन शक्ति से अनुप्राणित हो रहा था, उमंगहीन निष्क्रिय जैन जाति मरघट की शान्ति अपनाये हुए थी। भौतिक स्वार्थपरता की काई से आच्छादित नीरव सरोवर में जातीय उत्थान की एक लहर भी नहीं देखी जा सकती थी।

क्रान्ति के अग्रदूत भगवान् महावीर के इन मृतप्रायः उपासकों में प्रगति की चेतना विस्फुरित करने के लिए स्वयं एक स्वर्गीय विभूति को मानव-शरीर धारण करना पड़ा। संवत् १९३३ के चैत्र मास में जब स्वच्छ नीलम के पर्दे पर चन्द्रमा अपनी आठवीं कला का शुभ्र प्रकाश फैला रहा था, एक दिव्य ज्योति आरा के उसी प्रसिद्ध घराने में अवतरित हुई जो पहले से ही इसे धारण करने के लिए पवित्र बनाया जा चुका था। नवीन शिशु का प्रतिभाशाली मुखमण्डल और उसका अलौकिक सौन्दर्य इस तथ्य को सिद्ध कर रहा था कि एक उजड़े हुए समाज को बसाने के लिए किसी देवकुमार को कष्ट करना पड़ा है। अनुभवी पिता ने अपने पुत्र की योग्यता के अनुकूल ही उसका नामकरण किया।

इस सुन्दर बालक ने अभी जीवन के दस वसन्त भी नहीं देखे थे कि पिता ने उसे जीवन-यज्ञ की वेदी पर अकेला छोड़ दिया। साथ में रोने के लिए था एक नन्हां सा भाई धर्म कुमार, जिसने अभी तक यह भी नहीं जाना था कि जीवन और मृत्यु में क्या अन्तर है। जब इस परिवार से सहानुभूति रखने वाले इन वियुक्त बालकों के भविष्य का अनुमान करते, उस समय ये अपनी बाल सुलभ मुस्कुराहट से उस अंधकारमय भविष्य में मानों आलोक की रेखा खींच देते। कठिन अवसरों पर भी धैर्य धारण करने की कला सीखने का सुयोग इन्हें बचपन में ही मिल गया। भविष्य का निर्माण माँ की गोद में ही काल की करालता पर मुस्कुराने लगा।

दस वर्ष के किशोर देवकुमार ने पैतृक उत्तराधिकार में एक बड़ी जमीन्दारी के साथ अपने पूर्वजों की उदार दानशीलता, धार्मिक उत्साह और जातीय गौरव की भावना को भी अपना लिया। अप्राप्तवय होने के कारण इनकी जमीन्दारी राजकीय कोर्ट आव् वार्ड्स के अधिकार में चली गयी। बालक देवकुमार की शिक्षा-दीक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं हो सका। तीव्रबुद्धि, परिश्रम, अध्यवसाय और धैर्य के बल पर इन्होंने आइ० ए० तक कालेज की शिक्षा प्राप्त कर ली। इसके पूर्व ही सत्रह वर्ष की कोमल वय में इनके हाथ पीले किये जा चुके थे। इनकी पत्नी श्री अनूपमाला देवी स्थानीय एक प्रतिष्ठित जैन-परिवार की सुशील कन्या थीं, जिन्होंने प्रत्येक अवस्था में अपने जीवन-सहचर को उत्साह और सहारा देते रहना ही अपना कर्त्तव्य समझा और आज भी उन्हीं के पथ का अनुसरण कर रही हैं।

महत्त्वाकांक्षी युवक कुमार की हार्दिक इच्छा विश्वविद्यालय की उच्चतम शिक्षा ग्रहण करने की थी, परन्तु पारिवारिक परिस्थिति ने इनकी अग्रगति में बाधा डाल दी। जिलापति के आदेशानुसार इन्हें अपने नन्हें सुकुमार कन्धों पर जमीन्दारी और परिवार की देखरेख का भारी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बोझ सँभालना पड़ा। कुछ वर्ष पश्चात् राज्य ने आनरेरी मैजिस्ट्रेट का सम्मानीय पद प्रदान कर इनकी योग्यता प्रमाणित की! कई वर्षों तक इस पद का सुयोग्य संचालन कर इन्होंने भी राज्य कार्य में सहायता प्रदान की। अखिल भारतीय दि० जैन महासभा के दसवें अधिवेशन में प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्य तथा बारहवें अधिवेशन में सभापति के उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर मनोनीत हो इन्होंने समाज की नौका को खेने का भी गुरुतर कार्य्य संपादन किया। सन् १६०२ से जीवन पर्य्यन्त ये तीर्थक्षेत्र कमेटी के सभासद बने रहे। काशी के स्याद्वाद विद्यालय का मन्त्रित्व पद भी आरम्भ में इन्होंने संभाला। इस प्रकार व्यक्तिगत और सामाजिक क्षेत्र के विभिन्न महत्वपूर्ण कार्य्यों में अनवरत संलग्न रहने पर भी इनकी ज्ञानपिपासा सदैव जाग्रत रही। सारे लौकिक झंझटों के बीच भी उत्साही देवकुमार आध्यात्मिक और साहित्यिक अध्ययन के द्वारा आत्मविकास करने का समय निकाल ही लेते थे।

अचल पाषाणखण्डों से टकरा कर अग्रवाहिनी सरिता प्रबल वेग से उछलती है। सांसारिक विघ्न-बाधाएँ किसी कमठ जीवन में द्विगुणित उत्साह भरने वाली प्रेरणा-शक्ति बन जाती हैं। व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष ने कुमार जी को समस्त जैन-जाति की तन्द्रा भंग करने के लिए प्रोत्साहित किया। जातीय गौरव की पताका लेकर यह अमर सेनानी अपने समाज के विद्वानों के प्रति विह्वल होकर मार्मिक पुकार करता है :—

"हे हमारे परोपकारियों! हे हमारे भाइयों! हे हमारे जैन जाति की अवनति देखकर आँसू बहानेवालो! उठो, प्रमाद-निद्रा छोड़ो, शोककंटक का मुख तोड़ो और धार्मिक प्रीति में भरकर मज़हबी जोश का डंका बजाओ।"

कौन हैं वे शत्रु जो हमारी जाति को अशेषचिह्न कर देने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं?

"देखो २ अविद्या राक्षसी इसको घसीटे लिये जाती है। मिथ्यात्व राक्षस इसको इधर ढकेल रहा है। फूट चुड़ैल बीच में सहारा देकर अवनति के गढ़े में फेंक रही है। प्यारे भाइयों अब कोई कसर है?"

इनका दृढ़ विश्वास था कि ज्ञान के प्रचार बिना किसी भी जाति का उत्थान असंभव है। 'जैन गजट' के संपादकीय वक्तव्यों के द्वारा ये सदैव जैनियों को सभी प्रकार की शिक्षा और कला-कौशल में पारंगत होने की प्रेरणा देते रहे। लौकिक और पारमार्थिक सभी दृष्टियों से विद्या ग्रहण के पक्षपाती होने पर भी विशुद्ध ज्ञान की परिभाषा देते हुए ये कहते हैं :—

"जो ज्ञान विषयानल का वर्द्धक हो, अन्य जीवों के विकास में बाधक हो, प्राणी को मान पर्वत पर आरोहित करता हो, जो अपने आपको विस्मरण कराकर पर्वत की तलहटी में में पटक देने वाला हो, वह ज्ञान किसी प्रकार अज्ञान से कम नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अतः—

"ज्ञान भी सांसारिक मोह की आकुलता से व्याकुल रहता है तो अज्ञान अंधकार की संज्ञा में ही आ जाता है।"

स्पष्ट है कि आध्यात्मिक विवेक से युक्त ज्ञान को ही वे वास्तविक ज्ञान मानते थे। अविद्या राक्षसी से बचने के लिए इसीकी आवश्यकता है।

इसी वास्तविक ज्ञान के उज्ज्वल प्रकाश से वंचित रहकर हमारी जाति आज भी अंधकार में भटक रही है, मिथ्या संस्कारों में उसे आत्मकल्याण की मरीचिका के दर्शन हो रहे हैं परन्तु सुख, शांति और समृद्धि का दिन प्रति दिन ह्रास होता जा रहा है। कुमार जी ने समाज की नाड़ी पहचान ली थी और रोग का उपचार भी बतला दिया था। नारीत्व और पुरुषत्व के सम्यक् विकास से ही पूर्ण मनुष्यता का निर्माण संभव है। यदि समाज का एक अंग निष्क्रिय बना हो और दूसरा अर्द्धांग रोग से पीड़ित हो तो समाज व्यावहारिक जीवन में कितनी दूर आगे बढ़ सकता है? नारी-शिक्षा ही समाज से मिथ्याज्ञान के विनाशकारी राक्षस का अन्त कर सकती है। इसीलिए कुमार जी कहते हैं:—

"हे भाइयों इस न्याय से कि जब तक गाड़ी के दोनों पहिए ठीक न होंगे गाड़ी नहीं चल सकती। आपको लड़कों की भाँति लड़कियों को भी पढ़ा लिखा कर विवेकवान कर देना चाहिए जिसमें पढ़े हुए दम्पत्ति आनन्द से गृहस्थ-धर्म की गाड़ी चला सकें।"

हमारे समाज में बाल-विवाह की कुप्रथा ने ही बालक-बालिकाओं के व्यक्तिगत विकास में रोड़े अटकाये हैं। कुमार जी का विचार ठीक ही था कि लौकिक ज्ञान और आध्यात्मिक विचार में पुष्ट हो जाने के पश्चात् ही बालक-बालिकाओं का विवाह एक सुखमय परिवार की स्थापना कर सकता है और समाज की समृद्धि बढ़ सकती है। समाज की जन संख्या पर भी इसका प्रभाव पड़ता है, यह कुमार जी जैसे दूरदर्शी व्यक्ति ही समझ सकते थे। इस संबन्ध में कितने क्षोभ के साथ वे कहते हैं—

"यह कमबख्त बाल-विवाह बालक-बालिकाओं को विद्यालाभ से वञ्चित रखने के अतिरिक्त उनके जीवन को बेकार ही नहीं किन्तु दुखदायी कर देता है। यहाँ तक कि बहुत से घरों का सत्यानाश हो जाता है और ताले लग जाते हैं। …………१० वर्ष के अन्दर आध लाख जैनियों के कम हो जाने का बड़ा भारी कारण एक बाल-विवाह भी है।"

एक ओर इस प्रकार समाज की प्रगति रोकी जा रही है और दूसरी ओर समाज का वह अंग जो अपने वर्षों के अनुभव से अगली पीढ़ी को लाभ पहुँचा सकता था, विषयानल में समाज की कच्ची कलिकाओं को झोंक कर विधवाओं की संख्या ही नहीं बढ़ा रहा है, युवक समाज के समक्ष एक विनाशकारी आदर्श उपस्थित कर उसके भविष्य पर भी कुठाराघात कर रहा है। वृद्ध-विवाह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का कोई भी समाचार कुमार जी के हृदय में शूल की तरह चुभ जाता था। उनका हृदय रो उठता था। अबला जीवन के आँसुओं से उनकी वाणी सिक्त हो जाती थी। निम्न उदाहरण ही उनके हृदय की थाह लेने के लिए पर्य्याप्त नहीं हो सकता :—

"एक जैनी ने १३ वर्ष की बालिका को चौंसठ वर्ष के वृद्ध पुरुष के साथ विवाह दिया। हाय! पाठकों! इस भयंकर समाचार के बाँचने से क्या आपके कलेजे उस विचारी अबला के दुःख सहने के क्लेशों को विचार कर भर न आये होंगे?"

मानसिक विकास के लिए शारीरिक शक्ति अनिवार्य्य साधन है; जो संयम, शील और सम्यक् आचार के द्वारा ही प्राप्य है। इस विषय पर कुमार जी अपने समाज का ध्यान सदैव आकर्षित करते रहे। उन्होंने स्पष्टतः कहा है कि समाज की उन्नति के लिए उसके सभी अंगों का विकास आवश्यक है। इस विकास के प्रधान साधन हैं (१) योग्य उपाय (२) योग्य मुखिया (३) हार्दिक सहायता। परन्तु पाण्डु रोग से ग्रसित इस जर्जर समाज की आँखें तो केवल पीले धब्बे ही देख सकती थीं। समाज के पिछड़े हुए व्यक्तियों को सहारा देकर संपूर्ण समाज की प्रगति में हार्दिक सहायता पहुँचाने की आवश्यकता हमारे योग्य मुखिया नहीं समझ पाते। परिणाम है समाज के एक एक कीर्तिस्तंभ का पतन और नवीन प्रतिभा का संकोच। कुमार जी के सामाजिक विचारों का मूल मन्त्र था—

"प्रत्येक मानव की चित्त भूमिका में ऐसे २ भाव रूपी बीजों को बोना कि जिनके द्वारा उस व्यक्ति की मानसिक शक्ति प्रबल होकर दृढ़ता के साथ जगत में व्यवहार करने योग्य हो जाय।"

कुमार जी के उपर्युक्त वाक्य के प्रत्येक शब्द में जैन-समाज के उत्थान का बीज छिपा हुआ है। आज जबकि सहस्रों वर्ष से पिछड़ी हुई जातियाँ भी अपने जातीय गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने में समर्थ बन रही हैं, एकमात्र केवल जैन-जाति भारतीय रंगमंच से अपना अस्तित्व भी खोती जा रही है। पूर्व गौरव के ढोल पीट कर कोई जाति अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती, उसे वर्तमान की समस्याओं का निर्भीकता पूर्वक सामना करना पड़ेगा। खेद है कि कुमार जी की जातीय-भावना का लेश भी आज के जैन-समाज में नहीं रह गया। यही कारण है कि इस जाति का विलयन बड़ी तेजी से प्रारंभ हो गया है।

कुमार जी जैन-जाति के उत्थान में उस सांस्कृतिक चेतना के उत्थान का स्वप्न देखते थे, जो सदैव मानवता को संकटकाल से मुक्त कर जगत में सुख, शान्ति और समानता का संदेश फैलाती रही। जैन-संस्कृति के प्रसार में ही वे देश और विश्व का कल्याण मानते थे। पाश्चात्य संस्कृति के कुप्रभावों पर दृष्टिपात करते हुए वे कहते हैं—

"ऐसे समय पर जबकि चहुँ ओर आत्म धर्म लुप्त होकर एक ऐसी मायावी धर्माभासिनी देवी जगत के प्राणियों को विमोहित कर रही है कि जिससे वे सर्व सद्गुणों को पददलित कर शरीर को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुन्दर वस्त्रों से आच्छादन करने में, पैरों को विलायती बहुमूल्य चर्म-पादुकाओं से सुशोभित करने में, खानपान में भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार छोड़ खड़े बैठे व सोये जो कुछ भी आया खा लेने में, अपनी बाहरी चालढाल की चमक दिखला जगत के मानवों में 'चतुर' कहलाने की चतुराई करने में तथा अपने स्वार्थ के सम्मुख पर के न्याययुक्त अर्थ को भी अपने सहस्रशः उद्यम के बल से दूर कर देने में अपना गौरव समझते हैं............।'

पाश्चात्य जगत की इस भोगवादी, उच्छृंखल, बाह्याडंबरयुक्त और स्वार्थमयी प्रवृत्ति ने ही हमारे देश की सुख-समृद्धि को नष्ट कर दिया है। इसका प्रभाव दूर करने के लिए त्यागमयी, संयत, आत्मविकासयुक्त और परमार्थमयी जैन-संस्कृति का प्रसार ही एकमात्र उपचार है। कुमार जी जैन-संस्कृति का प्रचार करने के लिए देश में ऐसे उपदेशकों का जाल बिछा देना चाहते थे जो देशी और विदेशी भाषाओं को जानते हों, प्रचलित हिन्दी में सुन्दर भाषण कर सकते हों, संस्कृत के धर्म ग्रन्थों से पूर्णतः परिचित हों, और सभी धर्मों के मूल तत्वों को हृदयङ्गम किये हों। वर्तमान वस्तुवादी भावधारा कुछ आध्यात्मिक मुनियों के उपदेशों से दूर नहीं हो सकती। ये नवीन उपदेशक देशकाल के अनुसार व्यावहारिक उपदेश देकर जनता में धर्म का सम्यक् प्रचार कर सकेंगे। कुमार जी इनका वेतन भोगी होना आवश्यक समझते थे। स्पष्ट है कि ये जैन-संस्कृति को कुछ अन्धभक्तों की दिखावटी श्रद्धा का विषय बनाना नहीं चाहते थे, बल्कि उसे युग की समस्याओं का समाधान करने वाला महान् साधक बनाना चाहते थे। खेद है कि इस प्रकार की योजना अबतक सफलता पूर्वक कार्य्य नहीं कर सकी, केवल इसलिए कि हमारे पूंजीवादी जैन समाज ने इसमें मुनाफे की कोई गुंजाइश नहीं देखी। इसके सामने तो परोपकार और धर्मप्रदर्शन के कुछ सधे सधाये नुस्खे तैयार हैं। परिणाम है कि एक ओर संपत्ति और शोषण के बल पर एक जनवर्ग देश की समृद्धि बढ़ाने वाले उत्पादन कार्य्यों से विरत रहकर केवल उपभोग को ही जीवन का लक्ष्य बना रहा है और दूसरी ओर साधन और अवसर से वंचित विशाल जनवर्ग भिक्षावृत्ति के द्वारा पेट पालने में ही जीवन की सार्थकता मान बैठा है। उत्पादन के बिना उपभोग देश को निर्धन बनाता जा रहा है। इस सम्बन्ध में कुमार जी के शब्द आज भी विचारणीय हैं :—

"खेद की बात है कि हमारे भारत में भी लाखों ऐसे भिखमंगे बच्चे घूमा करते हैं जिनको हमलोग पैसे दे दे कर हमेशा के लिए भिखारी तथा बदमाश बना देते हैं। क्या अच्छा हो यदि कोई परोपकारी इन सबको यथोचित शिक्षा दिलाने के लिए आश्रमों का यत्न करे और तब कोई किसी बच्चे को पैसा आदि बिना काम लिये न देवे। क्या यह कार्य्य देश सुधार की श्रेणी में गणना योग्य नहीं है ?"

निर्धन भिखमंगों से भरा हुआ देश कुछ पूंजीपतियों के रहने से ही समृद्ध नहीं कहा जा सकता। प्रसिद्ध है कि 'बुभुक्षितं किन्न करोति पापं।" भूखा भारत धर्म, ज्ञान, रीति और नीति को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं समझ सकता। ऐसे देश की संस्कृति का नाश अनिवार्य्य है और इसका मूल है उत्पादन से उदासीनता; स्पष्ट है कि कुमार जी ने अपने युग का कितना गंभीर अध्ययन किया था और उनके विचार युग से कितने आगे थे। जैन-संस्कृति इसी भोगवाद को दूर कर कर्मवाद की पक्षपाती है। इसीलिए इस संस्कृति के विकास की आवश्यकता है।

कुमार जी के अनुसार अपनी संस्कृति की रक्षा का दूसरा उपाय है अपनी भाषा का पठन-पाठन और उसके व्यवहार का प्रोत्साहन। वे न तो विदेशी शिक्षा के विरोधी थे और न पाश्चात्य कला-कौशल के विरुद्ध। उन्होंने भारतीय विद्वानों के लिए अंग्रेजी शिक्षा को आवश्यक माना, केवल इसलिए कि हम पाश्चात्य जगत से अपनी संस्कृति के अनुकूल नवीन भावनाओं को ग्रहण कर अधिक व्यावहारिक बन सकें। यदि हम मिथ्या स्वाभिमान के वश में पड़कर दूसरों के गुणों को भी त्याज्य समझने लगेंगे तो हमारी संस्कृति एक संकुचित परिधि में रहकर नष्ट हो जायगी। वही संस्कृति उन्नत हो सकती है जो प्रत्येक देश, काल और अवस्था में ग्राह्य बन सके।

शिक्षा का प्रसार होने से मानसिक विकास तो हो जायगा, परन्तु देश की निर्धनता को दूर करने का प्रधान उपाय शिल्प और कला की उन्नति है; जिससे अपने देश के प्राकृतिक उपादान और जनशक्ति के प्रयोग द्वारा हम विदेशों में निर्वासित अपनी लक्ष्मी का पुनः स्वागत कर सकेंगे। विदेशी वस्तुओं का प्रयोग हमारी उत्पादन शक्ति के लिए सबसे घातक अस्त्र हैं। स्वदेशी कल-कारखानों की वृद्धि पर बल देते हुए वे कहते हैं —

"इसलिए जरूरी है कि हम कपड़ा, दियासलाई, लैम्प, आदि कुल चीजों के इतने कारखाने खोलें कि जिसमें हमें विलायत से मंगाने की जरूरत न पड़े"।

इस कार्य्य के लिए--

"हमको इस देश में ऐसे कलों व कारखानों के काम के जानकार मनुष्य पैदा करने चाहिए"।

और इसका सारा भार हमारे जैन-समाज पर है जो अपनी व्यापार बुद्धि के लिए प्रसिद्ध हो चुका है। विदेशों में जाकर इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करने वाले उनके ये शब्द हैं--

"हमारा तो यह विश्वास है, जबतक हमारे भारत के व्यापारप्रिय मारवाड़ी महाशय के विद्यार्थी अमेरिका जाकर शिल्प-विद्या लाभ न करेंगे तबतक इस देश में कारखानों का बढ़ना कठिन है।

इस सांस्कृतिक उत्थान के पुण्य कार्य्य में धर्म को बाधक मानना केवल अज्ञता का परिचय देना है। कुमार जी कहते हैं--

"जैन शास्त्रों में राजाओं और सेठों के जो चरित्र हैं उनमें बहुतों ने समुद्र यात्रा की थी, ऐसे प्रमाण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त अमेरिका व इंगलैण्ड में बिना मांस भक्षण किये कोई रह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं सकता, यह भी गलत है। लाखों आदमी विलायत अमेरिका आदि में मांस व मदिरा त्यागी मौजूद हैं"।

देश में सांस्कृतिक जागरण की नवीन लहर तब तक उद्वेलित नहीं हो सकती, जब तक हम स्वयं अपनी संस्कृति को उसके शुद्धतम रूप में पहचानने योग्य नहीं बन जाते। सदियों की आत्म-विस्मृति ने हमारे सांस्कृतिक व्यवहारों की उपादेयता पर इतना पर्दा डाल दिया है कि हम उसके महत्व को समझ ही नहीं पाते। समाज में प्रचलित त्योहारों और अनुष्ठानों की विकृति ने उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को धूमिल कर दिया है। उदाहरणार्थ दीपावली के विषय में कुमार जी की सूक्ष्म दृष्टि देखिये—

"यह एक जैनियों का ही त्योहार है। कार्तिक वदी १५ के रोज प्रातःकाल श्री महावीर स्वामी का मोक्ष-कल्याणक हुआ और उसी रोज श्री गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है, उसी रोज इनकी गंधकुटी रची गई, १२ सभाएँ लगीं, जिनमें स्त्री-पुरुषों ने आकर श्री गौतम स्वामी अर्थात् गणेश (गणधर) की अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी सहित पूजन की और धर्मोपदेश सुना"।

परन्तु आज हमारे जैन-समाज में क्या हो रहा है?—

"हमारे अज्ञानी स्त्री-पुरुषों ने वीतरागी श्री गणेश (गौतम स्वामी) के पूजन को त्याग कर मिथ्या प्रवृत्ति को यहाँ तक मान लिया है कि रात्रि को हटरी रखकर मिट्टी के गणेश-लक्ष्मी की पूजन करने से अपने कुटुम्ब व धन की वृद्धि समझते हैं।

यह है आध्यात्मिक-संस्कृति को त्यागकर वस्तुवादी प्रवृत्ति की ओर आकर्षित होने का परिणाम कि हम अपने स्मरणीय लक्ष्य का वास्तविक स्वरूप भी भूल गये। संस्कृति का ह्रास इससे अधिक अब क्या हो सकता है?"

कुमारजी की दृष्टि केवल अपनी जाति के उत्थान तक ही सीमित नहीं रह सकती थी। वह तो राष्ट्रीय उत्थान का एक अंगमात्र है। राष्ट्र के प्रत्येक घटक का विकास राष्ट्रीय-विकास का पूर्वाभास है। वे युग की प्रत्येक राष्ट्रीय भावधारा का समर्थन करने में सदैव तत्पर रहे हैं। स्वदेशी आन्दोलन इनके विचार के अनुकूल था। स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग में ये देश की समृद्धि का विकास देखते थे।

"भावार्थ यह कि हमको महंगे, सस्ते, फैशन, गैरफैशन का खयाल छोड़कर अपने देश की की बनी चीजों का व्यवहार करना चाहिये, जिसमें यहाँ की कारीगरी चमक उठे और फिर हमें दुर्भिक्ष फंड खोलना न पड़े और न भारत की आरत की कहानी बयान करनी पड़े"।

भारतवासियों ने अभी तक इस पर ध्यान नहीं दिया है जिसका परिणाम है कि एक ओर तो हम अपने देश की बहुमूल्य उपज कच्चे माल के रूप में सस्ते दामों में विदेशों को भेज रहें और दूसरी ओर पेट बजा बजा कर दो मुट्ठी चनों के लिए समस्त संसार में अपनी अति करुण कहानी के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गीत गाते हुए लज्जा का अनुभव नहीं करते। देश में औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में इनके विचारों का सारांश हम पहले ही जान चुके हैं। विदेशों में स्वावलम्बन को कितना महत्व दिया जाता है और इस भवना को राष्ट्र के भावी कर्णधारों में किस प्रकार बैठा दिया जाता है इस पर दृष्टिपात करते हुए वे कहते हैं—

"अमेरिका में लोग अपने पुत्रों को स्वपोषण (Self help) का नियम सिखाने के वास्ते उनको आप खाना कपड़ा नहीं देते हैं बल्कि वे खुद मिहनत करके पैदा करते और कालिजों में विद्यालाभ करते हैं। .... पर खेद है हमारे लड़के आराम की कोठरी में बैठकर विद्या प्राप्ति करना चाहते हैं। भला कहीं मसनद की गद्दी पर बैठकर तप होता है?"

क्या हमने कभी यह विचार करने की चेष्टा की है कि हमारा झूठा सन्तान-प्रेम स्वयं उसके भावी जीवन को कष्टदायक बना देता है और देश को निकम्मी जनसंख्या से भर देता है?

बंगालियों ने जब स्वदेशी आन्दोलन का प्रचार करने के लिए सभाओं का आयोजन किया तो ये कहते हैं—

"ऐसी सभा स्थान २ नगर २ और गाँव २ में होनी चाहिये कि भारत के व्यापार, शिल्प, कला-कौशल आदि की उन्नति हो। हमारे जैनी भाइयों को भी देश की भलाई में सम्मिलित होना चाहिए"।

अंग्रेजी सरकार के प्रति विद्रोह का प्रथम विस्फोट बंग-भंग के विरोध में मिलता है। उस समय कुमार जी शतशः जनता के पक्षपाती रहे। उनके शब्दों से कितनी दूरदर्शिता टपक रही है?

"इस प्रकार प्रजा की पुकार पर ध्यान न देना एक भारी राजनैतिक भूल है और बुरे परिणामों से खाली नहीं है"।

परन्तु वे किसी भी राष्ट्रीय अन्दोलन में नीति का भंग करना उचित नहीं समझते थे। उपदेश देकर सरलता से काम निकलने में उन्हें विश्वास था। परन्तु समाज, राष्ट्र और संस्कृति के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझने और तदनुसार कार्य्य में तत्पर होने की क्षमता हममें उसी समय आ सकती है जब हम अपने धर्म को समझलें अर्थात् विचारने और कार्य्य करने की उस प्रणाली को हृदयङ्गम करलें जो देश, काल और अवस्था के अनुकूल हमारी मौलिक प्रकृति से सामञ्जस्य रखती हो। सामाजिकता मनुष्य की मौलिक प्रकृति है और मस्तिष्क उसकी सबसे बड़ी विशेषता। इसीलिए निःस्वार्थ कर्म और दूरदर्शिता मानवधर्म के अभिन्न अंग हैं। जैन-धर्म के इस गूढ़ तत्व ने कुमार जी को आकर्षित कर लिया था। जिसे उन्होंने बड़े सरल शब्दों में व्यक्त भी किया है —

ऋषियों के वाक्यों पर.........ध्यान दीजिए। वे कहते हैं, हे भव्य जीवों! संसार के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुःखों से छूटने के लिए अपने कर्मों की निर्जरा कीजिए.........कर्मों को दूर करने का उपाय ध्यान है....... ध्यान ज्ञान और वैराग्य से होता है .... ज्ञान और वैराग्य परिग्रह की ममता को दूर करने व सत्संगति से प्राप्त होते हैं।

वह धर्म वास्तविक नहीं कहा जा सकता जो हमें, परलोक की सुनहली आशा में फँसाए रखकर इसलोक में अकर्मण्य बना दे। सच्चा धर्म तो लौकिक क्षेत्र में भी उन्नति का पथ प्रदर्शित करता रहता है और भविष्य से भी निश्चिन्त बना देता है। ऐसे आत्म धर्म का सच्चा परिचय पाने के लिये अनुभवी साधक के अतिरिक्त दूसरा कोई साधन नहीं। जिस जाति में ऐसे धर्म गुरुओं का अभाव हो गया उसका भविष्य अन्धकारमय नहीं तो और क्या? इसीलिए कुमार जी दुःख के साथ कहते हैं:—

"यद्यपि दो या चार क्षुल्लक हमें इधर उधर दिखलाई पड़ते हैं पर ये विद्याहीन व ध्यान के मार्ग से अनभिज्ञ होने के कारण न तो अपना भला न दूसरों का भला कर सकते हैं।"

परन्तु आज भी हमारे पास अपने पूर्वजों की वह अतुल निधि वर्तमान है जिसे उपयोग में लाकर हम अपनी इस प्रज्ञात्मक दरिद्रता का ही नाश नहीं कर सकते; किन्तु संसार के समस्त आकांक्षी आत्माओं को मुक्तहस्त दान देकर तृप्त भी कर सकते हैं। हमारे शास्त्र मुक्त आत्माओं के अनुभवों, विचारों और सन्देशों के अक्षय भण्डार हैं। आवश्यकता है इनके जीर्णोद्धार की और उनके आधार पर आधुनिक भाषाओं में छोटे छोटे ग्रन्थों के निर्माण की। परन्तु यह तो तभी संभव है जब हमारे हृदय में उन शास्त्रों के प्रति आदर का भाव हो, उनके द्वारा प्रतिपादित मार्ग को हम अपनी उन्नति का एकमात्र सहारा समझें और उनपर ध्यान देना लौकिक दृष्टि से भी आवश्यक मानलें। परन्तु आज क्या अवस्था है?

"भाई साहब आपको हँसी आवेगी लेकिन इतने शास्त्र सुने कि पूरे ४०, ४५ वर्ष सुनते हो गए, परन्तु अभीतक यह भी मालूम नहीं पड़ा कि जो शास्त्र जी बाँच रहे हैं, उनका नाम क्या है। यदि कभी पंडित जी पूछ बैठते हैं कि कहो साहब! कल क्या पढ़ा गया था और आज क्या पढ़ा गया है, तो हम सुनकर हँस देते हैं और झट कह देते हैं कि पंडित जी इनकी तो हमें कुछ भी खबर नहीं है। अब आप ही बताइये हमारा परलोक कैसे सुधरेगा।"

परलोक ही नहीं आत्मबल, आत्मगौरव और आत्मचिन्तन को भूल कर आज हम इस लोक में भी बिगड़ते जा रहे। आत्म-धर्म की हानि का एक विशेष कारण भी है। कुमार जी द्वारा तथ्य की सूक्ष्म अनुभूति देखिए:—

"यदि शास्त्रों के स्वाध्याय से व किसी कारण से किसी का चित्त संसार से उदास भी हुआ और ज्ञान तथा वैराग्य के सन्मुख भी हुआ तो उसको कोई स्थिर करने वाला व दिलासा देनेवाला व उसके विचार को सराहने वाला नहीं मिलता है, जिससे.........उसका वैराग्य क्षणस्थायी रहकर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सदा के लिए अन्त हो जाता है।

यह उनलोगों की कहानी है जो लंबे तिलक से आभूषित होकर धार्मिक कृत्यों की पहली पंक्ति में उचकते हुए देखे जाते हैं। आधुनिक यान्त्रिक सभ्यता को मानवता का चरम-विकास मानने वाले सुसभ्य नवयुवकों के लिए तो ये ग्रन्थ पुरातत्ववेत्ताओं के लिए ही उपयोगी हैं और ऐसे व्यक्ति चिड़ियाखानों में सुशोभित होने योग्य। कुमार जी धर्म के सामाजिक महत्व से पूर्णतः अवगत थे उनका विचार था कि धर्मरक्षा के लिए किसी धर्मावलंबी की सामाजिक एकता भी आवश्यक है अन्यथा उस धर्म का भी नाश होने लगता है।

धर्म प्रचार के लिए वे ईसाई मिशनरियों की पद्धति का प्रयोग इस युग के अनुकूल समझते थे। धर्मोपदेशकों की योग्यता के विषय में उनके विचार हम जान चुके हैं। उसके अतिरिक्त वे कहते हैं:—

"यदि हमारे जैनधर्म की भी पुस्तकें छोटी छोटी लिखकर इस प्रकार पढ़े लिखे लोगों में बाँटी जायँ तो जिनधर्म का महत्व सर्व साधारण पर प्रकट हो जाय।"

जैन-धर्म के प्रति इनके विचारों का सार 'जैन गजट' में प्रकाशित एक सूचना में मिल जाता है:—

"बड़े दिनों की तातीलों में उस धर्म की सभा होगी जो धर्म संसारी जीवात्माओं को परमात्मा बना देने के मार्ग का निरूपण करने वाला है।"

स्पष्ट है कि इस धर्म के प्रधान तत्व विश्वबन्धुत्व और कर्मयोग पर इनका अटूट विश्वास था।

अपने धर्म के प्रति एकनिष्ठा रखते हुए भी कुमार जी सांप्रदायिकता की मनोवृत्ति से लिप्त न थे। उनका कथन है कि—

"........निष्कारण कटाक्ष रूप वचनों की वर्षा अन्य मतों पर करना छोड़ कर न्याय और योग्यता को अपने हृदय का हार बनावे, जिससे जगत में लज्जित न होना पड़े।"

परन्तु अपने धर्म की मर्य्यादा भंग करने वाली कोई भी घटना सुन कर ये उबल पड़ते थे। पालीताना के ठाकुर साहब एकबार जूता पहने एक जैन मन्दिर में प्रवेश कर गये। इस घटना की आलोचना करते हुए ये निर्भीकता पूर्वक कहते हैं:—

"........जैनी क्या कोई भी धर्मावलंबी अपने देवालय में किसी को जूता पहन कर नहीं जाने देगा। ....श्रीमान को उचित है कि देशमात्र के धर्मों का गौरव बनाये रखें।"

मानव-धर्म का सम्यक्-विकास करने के लिए उत्कृष्ट साहित्य का विकास भी आवश्यक है क्योंकि इसीके माध्यम से हम अपने पूर्वजों के विचार जान सकते हैं और अपने जीवन में उनका उपयोग कर सकते हैं। कुमार जी ने इस युग की प्रचलित भारतीय भाषा हिन्दी का पक्ष ग्रहण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया, क्योंकि इसके द्वारा जनसमाज में किसी विचार का प्रसार अत्यन्त सुलभ और प्रभावोत्पादक हो सकता है। विदेशी भाषा से यह कार्य्य कठिन हो जाता है और हमारी उन्नति की गति धीमी पड़ जाती है। उनका कहना है—"हमारे लिखने का यह प्रयोजन नहीं है कि विदेशीय भाषा न सीखी जाय, किन्तु यह है यदि हम अपनी मातृभाषा में विज्ञान की चर्चा, डाक्टरी की पुस्तकें, वकालत के ग्रन्थ आदि पढ़ने लगें तो हमारा कितना समय बचे और वह बचा हुआ समय उस हुनर की उन्नति में लगाया जाय तो हमारे यहाँ विद्या का प्रकाश कितनी जल्दी हो।"

इसलिए अपनी मातृभाषा का साहित्य भाण्डर भरने के लिए—

"हमारे स्वदेशवासियों का यह कर्त्तव्य है कि वे नाना प्रकार की विद्याओं की पुस्तकों का उलथा विदेशीय भाषाओं से सुगम देवनागरी भाषा में करके धीरे धीरे इस बात का प्रचार बढ़ावें कि सामान्य नागरी जाननेवाला महाजन व दूकानदार भी उन पुस्तकों को पढ़कर उस विद्या के ज्ञान से तो विज्ञ हो जाय।"

नहीं तो निश्चित है कि—

"देश की उन्नति बिना स्वदेशीय भाषा का आश्रय लिए तथा विद्या की प्राप्ति में विदेशीय भाषा का आश्रय छोड़े नहीं हो सकी है।"

भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में ये सरलता के पक्षपाती थे—

"संस्कृत शब्दों की अधिकता.............विशेष रुचिकर न होगी। उनके स्थान में आजकल के बोलचाल के शब्दों में वस्तुओं के स्वरूप को समझाने से विशेष लाभ होने की आशा है।"

इसीलिये वे हिन्दी-प्रचार में जैनियों को भी सहयोग देने का परामर्श देते हैं—

"आरा नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी प्रचार में यथोचित यत्न करती रहती है। हम इसकी सफलता के इच्छुक हैं। देशोपकारी जैनियों को भी उक्त सभा के साथ विशेष सहानुभूति रखनी चाहिये।"

हिन्दी-साहित्य के विकास में सर्वप्रधान बाधा रही है, ग्रन्थकारों के प्रति प्रोत्साहन का अभाव; नहीं तो—

"भारतवर्ष में हिन्दी लेखकों का टोटा नहीं है। परन्तु उनके ग्रन्थ द्रव्याभाव से नहीं छपते और पड़े पड़े सड़ जाते हैं। ग्रन्थकार भी समुचित आदर तथा पुरस्कार नहीं पाकर हताश हो जाते हैं।"

ये स्त्रियों को भी लेखन कार्य्य के लिए उत्साहित करते रहते थे। साहित्य के कुछ अंगों के प्रति इनके व्यक्तिगत सिद्धान्त भी विचारणीय हैं। नाटक के अभिनेता के गुणों का निरूपण करते हुए ये कहते हैं—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"नाटक में उसी एक्टर (खिलाड़ी) की प्रशंसा होती है जो कि उसी भाव में भींगकर मानो वही हो जाता है।"

क्योंकि भारतीय दृष्टि से भावों का साधारणीकरण ही नाटक की सफलता है और—

"हजारों मनुष्यों के चित्तों में अपने चित्त का भाव खींच देना उसी समय संभव है जबकि उस रूप हो जाय।"

पारसी नाटकों के प्रति घृणा का यही कारण है—

"साहित्य की उन्नति का अंग नाटक भी है किन्तु आजकल भारतवर्ष में नाटकों की श्रद्धा पारसी नाटकों ने उठा दी है।"

उत्कृष्ट नाटक देश की उन्नति में कितने सहायक होते हैं?—

"यदि श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र जी भारतेन्दु के नाटक खेले जायँ तो आज भी भारतवर्ष इंगलैण्ड के समान उन्नति शिखरावलंबी हो जाय।"

परन्तु 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' सिद्धान्त निरूपण सरल है अपने जीवन में उन्हें कार्य्यरूप में परिणत करना किसी विरले महापुरुष के लिए ही संभव है। कुमारजी ऐसे ही दुर्लभ व्यक्तियों में अपना स्थान रखते थे। उन्होंने जो कुछ कहा उससे अधिक स्वयं कर दिखलाया।

केवल बाईस वर्ष की आयु में एकमात्र जीवन-साथी प्रिय अनुज बा० धर्मकुमारजी को इनसे छीनकर मानो विधाता ने इन्हें बलात् कर्मयोग की कठिन परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। अभी कुछ मास पहले ही विवाहित, उनकी चतुर्दशवर्षीय विधवा पत्नी श्री पं० चन्दाबाई का भविष्य इनकी सफलता का प्रमाणपत्र था। इन्होंने इस कठिन कार्य्य के सम्पादन में जिस धैर्य्य और व्यवहारकुशलता का परिचय दिया, उसके फलस्वरूप आज 'जैन-बाला-विश्राम' उस विदुषी पण्डिता के संरक्षण में नारी-जागरण की पताका फहराता हुआ देशभर में इनके नारी-शिक्षा के सन्देश को प्रवाहित कर रहा है। नारी-शिक्षा को ही ये देशोन्नति का आधार-स्तम्भ मानते रहे और उसी कार्य्य से इनकी सामाजिक सेवा का श्रीगणेश भी हुआ। आरा में कन्या पाठशाला की स्थापना कर, स्त्री लेखिकाओं को पुरस्कार इत्यादि के द्वारा जैन-गजट में लेख देने के लिए प्रोत्साहित कर, जैन-गजट की प्रतियाँ शिक्षित स्त्रियों को निःशुल्क बाँटकर, और उनकी धार्मिक शिक्षा का यथोचित प्रबंध कर इन्होंने इस कार्य्य में आशातीत उन्नति की। कुमारजी के परिश्रम का ही फल है कि आज आरा के जैन-समाज में एक भी निरक्षर महिला ढूँढ़ने से भी नहीं मिल सकती और 'विश्राम' से शिक्षा-प्राप्त स्नातिकाएँ किसी भी भारतीय विश्वविद्यालय के स्नातकों से कम योग्यता नहीं रखतीं।

समाज के बालकों को अपनी संस्कृति और सभ्यता का प्रज्वलित आलोकस्तंभ के रूप में देखने के लिए भी उन्होंने कम प्रयत्न नहीं किया। अखिल-भारतीय जैन महासभा के एक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वार्षिक अधिवेशन में इन्होंने शिक्षा सम्बन्धी जो प्रस्ताव उपस्थित किये वे इनके लक्ष्य पर प्रकाश डालते हैं।

(१) पाठशालाओं की संभाल के लिये एक जुदा मन्त्री होना चाहिये।

(२) परीक्षालय का काम 'बालबोधिनी परीक्षा' से 'पंडित परीक्षा' तक मय अंग्रेजी के ठीक किया जाय।

(४) महाविद्यालय को सच्चा जैन कालेज बनाने के लिए कम से कम .... मासिक आमदनी .... का प्रबन्ध किया जाय .... महाविद्यालय में एक बहुत योग्य अंग्रेजी पढ़े बी० ए० जैनी को सुपरिन्टेन्डेन्ट नियत किया जाय जो कि विद्यार्थियों की शारीरिक व मानसिक और विज्ञानीय उन्नति की ओर सदा ध्यान रक्खे।

इसी ध्येय की पूर्ति के लिये इन्होंने १२ जन सन् १९०५ को काशी में स्याद्वाद पाठशाला की स्थापना की थी जो बाद में एक महाविद्यालय के रूप में परिणत होकर आज भी स्याद्वाद दर्शन की शिक्षा से जैन-नवयुवकों को अपनी संस्कृति की ओर आकर्षित कर रही है। जैन बालकों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए आरा में भी इन्होंने एक जैन-पाठशाला की स्थापना की थी जो समाज से उचित सहयोग न पाने के कारण उनके जीवन-पर्य्यन्त ही सुचारुरूप में काम कर सकी। इन्होंने जैन-धर्म की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम-निर्धारण और उनके संचालन में सहयोग देकर परीक्षार्थियों का उत्साह भी बढ़ाया।

लुप्त होती हुई जैन-संस्कृत के पुनर्विकास का प्रयत्न तो इनके जीवन का सर्वप्रधान ध्येय बना रहा। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के पाक्षिक मुखपत्र जैन गजट की संपादकीय टिप्पणियाँ इनके सतत् जागरूक विचारों से सुषुप्त जैन-समाज को झकझोरती रहीं। आरा में एक जैन धर्म प्रचारिणी सभा की स्थापना कर नियम पूर्वक प्रत्येक सप्ताह उपदेशपूर्ण व्याख्यानों की आयोजना द्वारा ये समाज में धर्म-भावना का संचार करते रहे। इनके जीवन का सबसे महत्त्व-पूर्ण कार्य्य जिसने उन्हें सदा के लिए अमर ही नहीं बना दिया, जैन-संस्कृति के पुनरुद्धार में आशातीत नवचेतना उत्पन्न कर दी; इनका दक्षिण के मन्दिरों में भ्रमण कर प्राचीन शास्त्र-ग्रन्थों का चयन था। सन् १९०७ में इन्होंने यह पुण्य-कार्य प्रारंभ किया था। इनके साथ चुने हुए उपदेशक, भजनीक और पंडित भी थे। दक्षिण में छिपे हुए उस विशाल रत्नभण्डार को प्रकाश में लाने का श्रेय एकमात्र इन्हींको है। अनेक ग्रन्थों की मूल प्रतियाँ तथा अन्य की प्रतिलिपियाँ संग्रह कर इन्होंने आरा में एक विशाल शास्त्रागार की स्थापना की। "जैन-सिद्धान्त-भवन" आज उन अमूल्य रत्नों को सबके लिए सुलभ बना रहा है जो हमारी संस्कृति के प्रकाशपुंज है। इन्होंने सभी स्थानों पर वहाँ के निवासियों को पुस्तकालय स्थापित करने का परामर्श दिया और इस कार्य्य की उपयोगिता पर ध्यान दिलाया। दक्षिण के मन्दिरों में हिन्दू-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मन्दिरों की पण्डागिरी का बोलबाला था। उसे दूर करने के लिए इन्होंने अथक परिश्रम किया और आज वह बहुत कुछ मिटाया जा चुका है। श्री बाहुबली स्वामी की प्रतिमा के समक्ष इन्होंने प्रण किया कि जबतक जैन-धर्म से संबन्धित संपूर्ण साहित्य की खोज पूरी नहीं हो जायगी और उसकी सुरक्षा का यथोचित प्रबन्ध नहीं हो जायगा; मैं ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करूँगा।

इस प्रकार बम्बई, श्रवणबेलगोला, मैसूर, बंगलोर तथा अन्य स्थानों के सभी मन्दिरों का निरीक्षण करते हुए ये मूड़बिद्री पहुँचे। यहाँ पर प्राप्त जैन मूर्त्तियों और पुरातत्त्वों के विशाल भण्डार से वहाँ के अनभिज्ञ जैन-समाज को उदासीन देखकर इन्होंने एक सभा का आयोजन किया और उन्हें धर्म तथा शिक्षा के प्रति श्रद्धान्वित किया। फलस्वरूप वहाँ के जैनियों में एक नवीन जाग्रति फैल गयी और शीघ्र ही पर्य्याप्त धन इकट्ठा कर इनके द्वारा प्रदर्शित कार्य्यक्रम का अनुष्ठान आरंभ हो गया। इस प्रकार इन्होंने समस्त दक्षिण-प्रान्त के जैन-समाज को अपनी संस्कृति से अवगत कराकर लुप्त जैन-संस्कृति को फिर से स्थापित किया।

कुमार जी ने अखिल-भारतीय–जैन–महासभा को भी अपनी अद्वितीय जीवन-शक्ति से अनुप्राणित कर उसे जैन-समाज का सच्चा प्रतिनिधि बना दिया। सन् १६०७ में उक्त महासभा के कुण्डलपुर के अधिवेशन में सभापति के आसन से इन्होंने जो विचार प्रकट किये वे आज भी जैन-समाज के भावी-कार्य्यक्रम की आधारशिला बनने की योग्यता रखते हैं। इनके द्वारा निरूपित जैन-समाज की आधुनिक अवस्था का दयनीय विवरण जातीय गौरव से युक्त किसी भी जैनधर्मावलम्बी में उत्साह उत्पन्न करने के लिए पर्य्याप्त है।

कुमारजी अपने व्यक्तिगत जीवन में भी धार्मिक आचरणों को कितना महत्व देते थे इसका परिचय इसीसे मिल सकता है कि भाद्रपद के पवित्र मास में इन्हें जैनगजट के प्रत्येक अंक में दो चार पृष्ठ सम्पादकीय देने का नियम भी त्यागना पड़ जाता था। धार्मिक ग्रन्थों की सूची निर्माण करने के लिए इन्होंने १६ अक्टूबर सन् १६०५ को एक सूचना प्रकाशित की थी—

"हम भारत मात्र के जैन शास्त्रों की सूची बनाना चाहते हैं। जहाँ जहाँ जैन शास्त्रों के भण्डार हों वहाँ वहाँ के भाई हमसे फार्म मंगा लें और भरकर भेज दें तो बड़ी कृपा हो"।

यही नहीं इन्हीं के उद्योग से 'जैन यंगमेन्स ऐसोसियेशन' नामक धार्मिक ग्रन्थ प्रकाशक कमेटी का संगठन भी हुआ, जिसके ये स्वयं वाइस-प्रेसिडेन्ट थे। ये सदैव योग्य छात्रों को तमगे और वजीफे देकर उत्साहित करते रहते थे। जैन एसोसियेशन के छठे अधिवेशन में इन्होंने शुद्ध संस्कृत उच्चारण के लिए तथा जैन-धर्म पर एक पुस्तक लिखने के लिए दो तमगे बाँटे थे। अपनी जाति के विस्मृत लोगों को पुनः संस्कृत करने के कार्य्य में ये अत्यन्त तत्परता दिखलाते थे। राँची के पास बुंद नामक स्थान में कुछ आत्मविस्मृत जैन जाति का पता पाकर इन्होंने शीघ्र ही जैन गजट में यह सूचना प्रकाशित की—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

—यदि महासभा कोई उपदेशक इस डूबती हुई जाति के उद्धारार्थ भेज दे तो इसके व्यय आदि का प्रबन्ध 'जैन यंगमेन्स एसोसियेशन' की आरा ब्रान्च करने को तैयार हैं।

कहना नहीं होगा कि यह प्रबन्ध पूर्णतः कुमार जी की व्यक्तिगत उदारता पर निर्भर था।

जैन-जाति और जैन-धर्म के पुनरुद्धारक कुमार जी को हम अपने युग के प्रगतिशील साहित्य-निर्माता के रूप में भी पाते हैं। इनके द्वारा संपादित "जैन गजट" केवल एक सांप्रदायिक वर्ग का पत्र नहीं था, इसमें हमें उस युग की प्रत्येक हलचल का परिचय मिल जाता है। देश-विदेश के समाचार, राष्ट्रीय आर्थिक समस्याओं पर विचार विनिमय, साहित्यिक लेख और राजनैतिक महत्व के विषय भी इसमें यथोचित स्थान पाते थे। यही कारण हैं कि इनके प्रबन्ध में आने के पश्चात् शीघ्र ही यह पत्र इतना प्रसिद्ध हो गया कि इसे पाक्षिक से साप्ताहिक कर देना पड़ा। हिन्दी-प्रचार में सक्रिय भाग लेते रहने के कारण ही संवत् १९६२ में 'आरा नागरी प्रचारिणी सभा' का प्रथम अधिवेशन इन्हीं के सभापतित्व में मनाया गया।

कुमार जी स्वयं अपने युग के प्रसिद्ध लेखकों में स्थान रखने की क्षमता रखते थे। इनकी भाषा प्रचलित उर्दू शब्दों से समन्वित शुद्ध हिन्दी होती थी। यद्यपि कहीं कहीं व्याकरण की भूलें भी मिल जाती हैं परन्तु उस युग में जब द्विवेदी जी का लौह-पंजा अभी भाषा के परिष्करण की ओर झुका ही था, इसपर अधिक ध्यान नहीं दिया जा सकता।

उनकी लेखनी से प्रसूत परिमार्जित अलंकारमयी भाषा में एक गुम्फित वाक्य का उद्धरण उनकी शैली को समझने के लिए पर्य्याप्त होगा:—

"हम विशेष न लिखकर अपने विचारवान भाइयों से प्रार्थी हैं कि वे इस परम धार्मिक कार्य्य को विशेष उत्तेजना के साथ चलाने के लिए अवश्य अपने अपने नगर में आगामी वर्ष अधिवेशन की अनुमती का पत्र द्वारा व स्वयं दो चार प्रतिनिधियों को सभा में भेजकर अपने हौसले का फूल खिला देंगे जिसमें दर्शकों का मन आनन्द से भर जाय और कार्य्य कर्त्ताओं को उस फूल की सुगन्धि विशेष रूप से प्राप्त हो जाय जिसमें उनके मस्तिष्क एक बड़ी भारी शक्तिके साथ महासभा की सेवा में लवलीन हो सकें।"

एक रथ यात्रा के वर्णन में उनकी निरीक्षण शक्ति और वर्णन शैली का स्वरूप मिलता है—

"झंडियों की बहार और बाजों की ध्वनि मानो पुकार २ कर दूर २ से धर्म के प्रेमियों को बुला रही है और यह सूचित कर रही है कि यदि संसार के दुःखों से बचना है तो श्री वीतराग भगवान की सवारी का दर्शन करो और उनके उपदेशों को भजनों के द्वारा सुनकर चित्त में विराजमान कर लो। इतने में श्री अरहन्त देव की शुक्ल पाषाणमयी मूर्ति एक बहुत बड़े सुवर्ण के रथ पर विराजमान दर्शित हो रही हैं।"

सूक्ष्म अनुभूति, कल्पना और अभिव्यक्ति की वक्रता इत्यादि साहित्य के सभी प्रधान गुण उपर्युक्त पंक्तियों में वर्तमान है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुमार जी सुन्दर कविता भी करते थे। इनकी काव्य-रचना में खड़ी बोली का जो परिमार्जित स्वरूप मिलता है वह उस युग के लिए प्रशंसनीय है—

"सुवर्णगर्भा इस भारत को कहते थे सब लोग।
भारतवासी हुए भिखारी चहुंदिक छाया शोक॥
हृदय आपका हिल जायेगा भारत दशा निहार ;
शोक शोक की धूम मची है चहुं दिक हाहाकार॥
अचल कीर्ति का अपना स्वामी कीजे यहाँ प्रचार।
स्वागत ! श्री युवराजमहोदय ! स्वागत राजकुमार॥

उपर्युक्त पंक्तियाँ एक राष्ट्रीय विचारधारा को व्यक्त करने वाली मार्मिक अभिव्यक्ति से सिंचित हैं। कवि जन समाज के हृदय तक पहुँच कर उसकी अभिव्यक्ति में भी सफल हुआ है। करुण-रस के सभी अंग इस छन्द में वर्तमान हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि कुमार जी जातीय गौरव से पूर्ण, धर्मधीर, उदार, विद्वान्, विचारवान, व्यावहारिक, राष्ट्रप्रेमी, लोकहितैषी, परिश्रमी, अध्ययनशील और सहृदय जन-सेवक थे। उनके जीवन का एक निर्दिष्ट लक्ष्य था और उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उनके सामने था एक व्यवस्थित कार्य्यक्रम। क्षणिक आवेश में किए गए किसी कार्य्य को वे महत्व नहीं देते थे। उनका कहना था—

"प्रबन्ध कर्ताओं को कार्य के आरंभ में यह अवश्य देख लेना चाहिए कि हम इस कार्य्य को चिरस्थायी करते हैं न कि थोड़े दिन के लिए"।

कुण्डलपुर के वार्षिक अधिवेशन में समाज के समक्ष प्रगति का कार्य्यक्रम उपस्थित कर जब ये लौटे तो तदनुसार कार्य्यक्षेत्र तैयार करने की आयोजना करने लगे। परन्तु 'मेरे मन कुछ और है विधि के मन कुछ और' नीति के अनुसार वहाँ से आते ही ये भयानक रोग से पीड़ित हो गये। साढ़े तीन मास तक ये रोगशय्या पर पड़े रहे। इस अवस्था में भी वे अपने धार्मिक नित्यकर्मों में कुछ भी अन्तर नहीं आने देते थे। घातक रोग की भीषणता से वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उनके समक्ष केवल जाति का भविष्य था और जिह्वा पर भगवद्नाम का जप। प्रसिद्ध जैन विद्वान् और साधु श्री वर्णी नेमिसागर जी सदैव इनके पास रहकर आध्यात्मिक वातावरण के द्वारा इनकी आत्मा को तृप्त कर रहे थे। ज्यों ज्यों रोग बढ़ता गया संसार की ओर से विरक्ति होती गयी और आत्मचिन्तन में ये लीन रहने लगे। जैन-साहित्य की रक्षा और समाज सुधार का काम सुचारु रूप से चलता रहे, इस दृष्टि से इन्होंने लगभग दस हजार रुपये वार्षिक आय की एक लाख से अधिक की संपत्ति समाज को दान कर उसके प्रबन्ध के लिए एक ट्रस्ट का संगठन कर दिया। कुमार जी का यह अन्तिम उद्योग आज जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा कन्या पाठशाला, स्याद्वाद महाविद्यालय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बनारस, श्री धर्मकुमार दातव्य औषधालय आरा, तथा विभिन्न जिनालयों को आर्थिक सहायता प्रदान कर उनके जीवन की साधना को चिरस्थायी बना रहा है। समाज के प्रति उनका अन्तिम सन्देश यही था कि वे जैन संस्कृति को मानव-विकास का साधन बनाना चाहते थे और भगवान महावीर के अनुयायी होने के नाते उनके शान्तिमय विचारों से समस्त विश्व को सांसारिक ज्वाला से मुक्त करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे।

अन्तिम अवस्था में शल्य-चिकित्सा के लिए कुमार जी कलकत्ता ले जाये गये। चिकित्सक इनकी आरोग्यता से निराश हो चुके थे और अब इनकी भी इच्छा जीने की नहीं रह गयी थी, बल्कि यथाशीघ्र मृत्यु को आलिंगन कर नवजीवन प्राप्त करने की थी। मृत्यु के छः घण्टे पहले इन्होंने सल्लेखना व्रत धारण कर लिया और जीवन लाभ करने पर भी अनाहार का निश्चय कर लिया। इसके बाद इन्होंने अपने पास से नेमिसागर वर्णीजी को छोड़ कर सबको हटा दिया और स्वयं आत्म-चिन्तन और शास्त्र श्रवण में मग्न हो गये। इसी शान्तिमय अवस्था में संवत् १९९४ की श्रावण शुक्ला अष्टमी को जैन-समाज का यह प्रकाशपुंज उस विद्युत रेखा के समान चमक कर अदृश्य हो गया जो भयानक मेघमण्डल से आच्छादित गगन के अन्धकार में आगे बढ़ते हुए पथिक को मार्ग की अस्पष्ट झाँकी देकर विलीन हो जाता है; समाज को पुनः अन्धकार में टटोलने के लिए असमय में छोड़ देने वाले इस मार्ग प्रदर्शक से वंचित होकर संपूर्ण जैन समाज ही नहीं आसमान भी अश्रुधारा बरसा रहा था। परन्तु इस क्षणिक आलोक में ही उन्होंने हमें मार्ग का जो आभास दिया है, उसे ग्रहण कर हम सरलता पूर्वक आत्म विस्मृति को इस भयानक अँधियारी में आगे बढ़ते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं जहाँ पर है केवल शान्ति, सौहार्द, सन्तोष और समृद्धि।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाबू देवकुमार जी के प्रति

[रचयिता—श्री महेन्द्र 'राजा']

धन्य हो तुम ध्रुव यशस्वी, ज्ञान-मन्दिर के पुजारी,
बन्दनीय, विशाल-वन्दित, दीन-जन के कष्टहारी।
हृदय था सुविशाल पाया, निष्कलंक चरित्र थे तुम,
शान्ति के एकान्त सेवी, छात्र-हितकारी बने तुम॥

तुम वदान्य-वरेण्य राजा, कर्ण से थे महादानी,
एक निष्ठ, सजीव प्रतिमा, त्याग की थे निरभिमानी!
तुम न भूले संस्कृत को, संस्कृति के पुजारी तुम,
देव! आरा सत्य ही तो बन गया अब 'देव-आश्रम'॥

तुम्हारी दृष्टान्तभूत चरित्र-निर्मलता कहें क्या?
सत्यवादी, सुहृद, विद्यारसिक तुम सब थे; नहीं क्या?
हुआ कातर हृदय दुःख लख, दूसरों का नयन-भर-जल,
मुस्कराये दूसरे क्षण दे दया का दान निर्मल॥

किया निर्भय दीन-जन को; वह तुम्हारी थी मनुजता,
वह मनुजता थी कि या थी, वह मनुज-हृद की सरलता।
तुम न हँसते थे कभी, पर हृदय में था हास्य रहता,
सहज, मन्द सुमधुरता का एक मौन प्रपात बहता॥

तुम न सामाजिक-जगत में कभी पीछे हटे, बढ़ते—
ही गये तुम सदा ही, निष्काम-भावी चरण धरते।
मूक-वाणी के स्वरों में, कह रहा है 'देव-आश्रम'
यह तुम्हारी सजग स्मृति, यह तुम्हारा 'बाल-आश्रम'॥

तुम रहे सिद्धान्त के पक्के, चले सिद्धान्त लेकर,
आज गाथा गा रहा तेरी, 'भवन-सिद्धान्त' सुन्दर।
देव! कवि के स्वर मिला लो, आज अपनी साधना में,
कवि न विस्मृत भूल जावे, कह रहा क्या भावना में?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाबू देवकुमार जी : एक संस्मरण

[ले० —श्रीयुत् पं० हरनाथ द्विवेदी, काव्य-पुराण-तीर्थ]

संस्मरण दो प्रकार का होता है निर्जीव तथा सजीव। जिसके संस्मरण से सार्वजनीन कार्यों के लए कुछ भी प्रोत्साहन नहीं मिले वही निर्जीव संस्मरण है अन्यथा सजीव। मानवरूप में अवतीर्ण बाबू देवकुमारजी ने औदार्यपूर्ण विश्वजनीन कार्यों से अपने को अक्षरशः-अमर सिद्ध कर दिया है।

भूतकाल की पूर्णता की पराकाष्ठा को पार किये हुई अर्थात् आज से लगभग ५० वर्ष की बातें मैं लिख रहा हूं; क्योंकि उन दिनों १९-२० साल का नवयुवक था और अब तो मेरा अगला डग ७० की सीढ़ी पर जमा हुआ है। वस्तुतः ऐसे सजीव संस्मरण के लिए सजीव, बहुमुखी एवं स्फूर्तिप्रद लेखनी की ही आवश्यकता होती है। किन्तु उदारहृदय, निष्कलंकचरित्र, छात्रकल्पवृक्ष, नैष्ठिक एवं शान्ति के एकान्तसेवी अपने आश्रयदाता स्व० बाबू देवकुमार जी के सजीव संस्मरण में मेरी निर्जीव लेखनी एकाध पंक्ति लिखकर कृतकृत्य होने से भला कब बाज़ आनेवाली है ? और मैं भी अपने को तभी भाग्यशाली समझूँगा, पर पाठक इसे मखमल की तोशक पर मूंज की बखिया ही समझें।

हां!!! वह दिन मुझ से भुलाये भी नहीं भूलता, जिस दिन मैली-कुचैली मिरजई पहने, एक बड़ा सा गमछा लिये और मलयज चन्दन ललाट पर लेपे हुए मैंने दो तल्ले की पक्की इमारत के निचले भाग के एक कमरे में श्रीचन्दनमिश्रित केसरके श्रीमुद्रांकित तिलक से अंकित ललाट वाले और तांबूल रसका आस्वादन करते हुए आपको शान्त तथा गंभीर मुद्रा में देखा था। बात यह थी कि दो ही तीन महीने के पितृ-वियोग से जर्जर मैं जीविकोपार्जन करने के लिए आरा आया हुआ था। महामहोपाध्याय पं० सकलनारायण शर्मा विद्यावाचस्पतिजी (गुरुवर्य) की शिक्षणशाला (नारायण विद्यालय) में मैं प्रविष्ट भी हो गया था। संस्कृत-छात्रों के अनन्य आश्रयदाता श्री गुरुजी ने मेरे भोजनादि का समुचित प्रबन्ध भी कर दिया था किन्तु मुझे देनी थी काव्य की मध्यमा परीक्षा। पुस्तकें मेरे पास थीं नहीं। कई छात्रों ने मुझसे कहा कि "आप बाबू देवकुमारजी की कोठी में जाकर उनसे मिलें, वह आपकी पुस्तकें मँगवा देंगे। पढ़ने के निमित्त असमर्थ और होनहार छात्रों की अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्हें आप आरा में वदान्य-वरेण्य राजा कर्ण ही समझें।" बस,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देर अब किस बात की। मैं कुछ पुष्प लेकर आपकी कोठी को चला। पर छात्रों से आपकी सात्त्विक दानशूरता की प्रचुर प्रशंसा सुनकर मेरे असात्त्विक अन्तःकरण में समुदित छल-छद्म ने आपसे तत्कालीन आवश्यकता से भी अधिक मांग करने को मुझे प्रोत्साहित कर दिया। कुछ आशीर्वादात्मक श्लोक पढ़कर दो-एक पुष्प आपके करकमल में मैंने रख दिये। आपने मेरी ओर देखकर कहा—'आपका घर कहां है ? कौन हैं ? कैसे आये ?'' इनके उत्तर में जाति ग्रामादि कहकर कैसे आये—इसका उत्तर देते समय आपकी तेजस्विता-पूर्ण आंखों की जाज्वल्यमान ज्योति मेरी तमःपूर्ण आंखों में पड़ते ही जिस प्रकार तपोनिष्ठ ऋषियों के आश्रम में आये हुए हिंसक जीव भी उनके तपःप्रभाव से प्रभावित हो अपनी सहज-हिंसावृत्ति से विरत हो जाते हैं उसी प्रकार आप-जैसे आदर्श मानवमुकुट के मिलन से मेरी पूर्व-चिन्तित लोभग्रस्ति नौ दो ग्यारह हो गयी और झट अपनी प्रकृत माँग—काव्यकी मध्यमा दे रहा हूँ, पाठ्य पुस्तकें नहीं हैं—आपके समक्ष मैंने प्रस्तुत की। आपने अपने सहज सौम्य भाव से कहा कि "पुस्तकें जहाँ मिलती हों वी० पी० से भेज देने को लिख द। वी० पी० आ जाने पर डाकिये को लिये यहाँ आजाइयेगा—कोठी से रुपये मिल जायेंगे।'' मैंने तत्क्षण जीवानन्द विद्यासागर कलकत्ते को पुस्तकें वी० पी० से भेज देने को लिख दिया। पुस्तकें यथा समय आगयीं तथा कोठी से रुपये भी मिल गये।

अस्तु, अब मेरा अध्ययन सुचारु रूप से चलने लगा। मेरे गुरुजी आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्थापक, मंत्री या यों कहिये उसके सर्वेसर्वा थे। हिन्दी के प्रायः सभी समाचारपत्र वहाँ आया करते थे अतः मुझे भी हिन्दी की कुछ-कुछ गन्ध लग गयी थी। मेरे गुरुजी से बा० देवकुमारजी की बड़ी मधुर मैत्री थी। सभा के लिए आर्थिक साहाय्यकी आवश्यकता होने पर गुरुजी आपसे उसकी पूर्तिकी अधिक अपेक्षा करते थे। क्योंकि सार्वजनीन साहाय्यापेक्ष्य कार्यों में आपकी औदार्यपूर्ण दानधारा बड़े प्रखर वेग से प्रवाहित होती रही थी। एक दिन गुरुजी ने मुझसे कहा कि "बाबू देवकुमारजी ने अपने अष्टवर्षीय बच्चे को हिन्दी पढ़ाने के लिए मुझसे एक छात्र देने को कहा है। तुम्हें ही वहां भेजने को मैंने सोचा है। एक पत्र मैं दिये देता हूँ - इसे लेकर तुम उनसे मिलो।"

उन दिनों दुर्दान्त दमे की व्याधि से ग्रस्त होने के कारण आप कोठी छोड़कर सपरिवार अपनी मैनेजरी कोठी में ही रहा करते थे। मैंने वहीं जाकर गुरुजी का दिया हुआ परिचयपत्र आपको दे दिया। पत्र पढ़ और मेरी ओर देखकर आपने कहा कि "परीक्षा पास कर ली।" मैंने संकुचित होकर कहा, नहीं श्रीमन् ! क्यों ?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैंने कहा कि पांच प्राणी के भरण-पोषण की अस्त-व्यस्तता से समुचित अध्ययन नहीं होने के कारण मैं असफल रहा। कुछ चिन्तित हो ठुड्डी पर हाथ रखकर आपने कहा—"आपके ऊपर परिवार-पोषण का भी भार है? साधारणतया कितने में आप अपनी गुजर कर लेते हैं?" मैंने कहा "दस रुपये में।" वस्तुतः मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिए जब कि पक्की तौल से १४ सेर का चावल, १३ सेर का आटा, १३ की दाल और १ रु० में पौने दो सेर का घी मिलता था—प्रति व्यक्ति २ रु० मासिक भोजनाच्छादन के लिए पर्याप्त थे। इन दिनों तो प्रतिप्राणी के लिये ३५ रु० पड़ जाते हैं; पर भोजनाच्छादन पूर्वानुपातः निकृष्टतम। आपने कहा कि १० रु० के लिए कितने घंटे लग जाते हैं। मैंनेकहा कि ५-६ घंटे। आपने कहा कि पण्डितजी से मैंने कहा था कि १२ बजे से ४ बजे तक हिन्दी पढ़ाने के लिए एक छात्र दें, जिन्हें १० रु० वेतन में मिलेंगे। पर मैं अब सोच रहा हूं कि आप १२ से २ ही बजे तक पढ़ायें और १२ रु० मासिक आपको कोठी से मिलेगा। किन्तु परिश्रम करके इस साल परीक्षा पास कर लें। अन्यथा मैं समझूँगा कि आप विद्यार्थी नहीं प्रत्युत केवल अर्थार्थी हैं। परीक्षा पास कर लेने पर आपकी वेतनवृद्धि की भी चेष्टा की जायगी। आप आज ही से पढ़ाना प्रारंभ कर दें। मुझे तो मांगी-मुराद मिली—मनमें कहा कि मैं आज अपने सौभाग्य-सुरतरु के आश्रय में आ गया। अस्तु चि० बड़े बब्बू (बा० निर्मलकुमारजी) बुलाये गये। आप भीतर बँगले से निकल आये। अवस्था लगभग आठ साल की होगी। दुबले-पतले लालिमा लिये हुए तेजस्विता की प्रतिमूर्ति चि० निर्मलकुमारजी को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यही पं० जी आज से आपको पढ़ायेंगे—किताब कापी लेते आइये। बाबू साहब के निकट ही एक कालीन-बिछी चौकी पर मैं बैठ गया। चि० बड़े बब्बू हिन्दी की एक पुस्तक और दो एक कापियाँ लिये मुझ अदृष्टपूर्व अध्यापक को एकटक देखने लगे। मैंने पढ़ाना प्रारंभ कर दिया। यों मेरा अध्यापन अविच्छिन्न रूप से चलने लगा। प्रतिदिन आपके निकट मुझे पढ़ाना पड़ता था। भले ही विशेष पढ़े लिखें न हों, पर ब्राह्मण प्रकृत्या अपने को वर्णज्येष्ठ तथा ज्ञानज्येष्ठ समझने में उन दिनों भूल नहीं करते थे। अतः मेरी धारणा थी कि बाबू साहब एक बड़े जमींदार हैं। कुछ पढ़े लिखें होंगे। आपको हिन्दी की विशेषज्ञता कहां? यही कारण था कि बिना कुछ सोचे-समझे निर्भीकतापूर्वक पढ़ाता था। एक दिन किसी दोहे का अर्थ उल्टा सीधा पढ़ा रहा था। "आप झट टोक बैठे—पं० जी क्या पढ़ा रहे हैं?" मैंने कहा कि यही दोहा। आपने कहा इसका अन्वय और शब्दार्थ तो कहिये। मैंने जरा सँभलकर अन्वय और शब्दार्थ कह दिये। तब इसका अर्थ क्या होगा?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसका प्रकृत अर्थ भी मुझसे आपने कहलवा दिया। और कहा कि पहले आपके कथित अर्थ से इस अर्थ में कुछ अन्तर है ? मैंने संकुचित होकर कहा कि मैं अशुद्ध पढ़ा रहा था। मेरे सिरपर मानो सौ घड़े पानी पड़ गये। स्तब्ध और कुण्ठितकंठ देखकर मुझे आश्वासन देते हुए आपने कहा कि अध्यापक को छात्रों को पढ़ाने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। आप दोहे का अन्वय तथा शब्दार्थ जानते हुए भी इनका सदुपयोग नहीं कर शीघ्रता में मनमाना अशुद्ध अर्थ कर रहे थे। अस्तु, अबसे ऐसी शीघ्रता पढ़ाने में न करें। मैंने डेरे पर आकर गुरुजी से यह घटना कही। आपने कहा कि बाबू देवकुमारजी अन्यान्य जमींदारों और कोठीवालों की तरह गद्दीपर बैठे निरक्षरता का निदर्शन बन हमेशा चापलूसों से घिरे रहकर अपने जीवन को कृतकृत्य तथा धन्य-धन्य समझनेवालों में से नहीं हैं। यह एक सुदक्ष, ग्रैजुएट, उर्दू-फारसी के अतिरिक्त हिन्दी के अच्छे मर्मज्ञ तथा अपने समाजिक पत्र "हिन्दी जैन गजट" के सफल सम्पादक हैं। जैन महासभा के किसी वार्षिकोत्सव के वह सभापति भी हो चुके हैं, जिनका गवेषणापूर्ण भाषण मैंने जैन पत्रों में पढ़ा है। आप पटना ला कालेज में भी ६-७ महीने तक कानून का अध्ययन कर चुके हैं। बा० देवकुमारजी संस्कृत के अधिक जानकार नहीं होने पर भी संस्कृत के अनन्य प्रेमी हैं। क्योंकि अपने एकमात्र अनुज बा० धर्मकुमारजी को अंग्रेजी के साथ संस्कृत के एक अच्छे पण्डित रखकर उच्च शिक्षा दिलवाई थी। बा० धर्मकुमार जी धाराप्रवाह के साथ संस्कृत बोलते और लिखते थे। क्योंकि, व्युत्पत्ति के साथ उन्होंने समूची कौमुदी पढ़ ली थी। ऐसे होनहार एवं १७ वर्ष की उम्र में ही बी० ए० में पढ़नेवाले अपने दक्षिण भुजतुल्य भाई की अप्रत्याशित मृत्यु हो जाने के कारण बा० देवकुमारजी के स्वास्थ्य को बड़ा गहरा धक्का लगा है। इनका उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुख स्वास्थ्य देखकर भावी दुर्घटना की चिन्ता हम मित्र-मण्डली को सदा डाँवाडोल किये रहती है। संस्कृति-पंडितों तथा छात्रों के लिए देववृक्षप्रतिम बा० देवकुमारजी स्वास्थ्य-सम्पन्न होकर चिरायुष्मान् रहें, यही शुभ-कामना सबों के अन्तस्तल में सदा जागरूक रहती है। इनकी दृष्टान्तभूत चरित्र-निर्मलता, सत्यवादिता, सहृदयता, विद्यारसिकता एवं परदुःखकातरता आरा की अग्रवाल मण्डली को ही नहीं प्रत्युत बड़े से लेकर छोटे तक सर्वसाधारण जनता को इनमें सच्ची श्रद्धा प्रकट करने को विवश किये रहती है। तुम अपना अहोभाग्य समझो कि इनके आश्रय में पहुंच गये। तुम्हें २ घंटे के ४ रु० के बदले १२ रु० मासिक छात्रवृत्ति दे रहे हैं न कि पाठनवृत्ति।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मेरा अध्यापन अबाध गति से चलने लगा एवं गुरुजी से बाबू साहब का प्रकृत परिचय पा और गुणवर्णन सुनकर मैं बड़ा ही प्रभावित हुआ तथा साथ ही अब आपको बहुत निकट से देखने भी लगा। आपके यहाँ अन्याय विषयों के विद्वानों का भी समागम रहता था। कभी किसी मौलवी को हाथ में तसवीर लिये बातें करते देखता था तो कभी किसी पण्डित को तात्त्विक विचार करते। मयूरपिच्छधारी कौपीनी जैन साधुओं के आगे तो भक्तिविह्वल एवं प्रणत मैंने आपको अनेक बार देखा था। हाँ, उन दिनों आरा के आस ही पास रहनेवाले पं० मुरलीधर शर्मा नामक एक अच्छे नैयायिक विद्वान् सदा आपके पास रहा करते थे। जब-तब बाबू साहब को पं० जी से शास्त्रीय विचार-विनिमय करते भी देखता था। पं० जी बड़े ही निस्पृह, चिन्तनशील, आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत तथा ज्ञानगरिमासे गंभीर प्रकृति के मुझे जान पड़ते थे। किन्तु दुःख की बात है कि पंडितजी ने अपने लिए "व्याघ्रचर्मावृत शृगाल' की लोकोक्ति को ही चरितार्थ कर दिखाया। क्योंकि कालान्तर में मुझे ज्ञात हुआ कि पं० जी के गांव के निकट ही बाबू साहब के सैकड़ों बीघे जीरात के खेत हैं। 'दर्शनशास्त्र की पाठशाला खोलकर मैं निश्चिन्त हो घर पर ही छात्रों को पढ़ाना चाहता हूँ' यह कहकर आपसे कई बीघे जमीन उन्होंने वृत्तिरूप में लिखवा. ली, जिसका मूल्य कम से कम ५० हजार रुपये होता है, किन्तु प्रस्तावित पाठशाला अपने प्रकृत रूप में न रहकर पं० जी के परिवार-पोषण में ही परिणत हो गयी। अन्त में पं० जी ने बहुत दिनों तक पागल होकर बड़े कष्ट से ऐहिक लीला समाप्त की। किसी ने सच कहा है— 'धोखा खाना कहीं अच्छा है धोखा देने की अपेक्षा।"

बाबू साहब में एक अपूर्वता मैंने यह देखी कि आप कभी हँसते नहीं थे। आप से बातें करते अन्यान्य शिक्षित-समुदायको प्रसंगानुसार ठहाका लगाते मैं भले ही देख लूं। हाँ-पण्डिताचार्य स्वामी नेमिसागरजी वर्णी के साथ जब धार्मिक बातें छिड़ जाती थीं तो हास्यप्रसंग पर कभी-कभी आपके प्रशान्त मुखमंडलपर स्मितमुद्रा की एक क्षीणरेखा बिजली-सी कौंध जाती थीं। वस्तुतः हमारे पंडिताचार्य वर्णीजी महाराज विशुद्ध वीर, करुण, हास्य एवं शान्तरस का अवतरण करने में सिद्धहस्त हैं। आप ही जैसे कर्मठ सच्चे साधुओं की समाज को आवश्यकता है।

मैं ऊपर एक जगह कह आया हूँ कि आप सार्वजनीन कार्यों में भाग लेना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते थे। ऐसी दशा में अमर भाषा संस्कृत की दौहित्री, प्राकृत की पुत्री तथा अन्यान्य अपभ्रंश भाषाओं की सहेली आर्यभाषा हिन्दी की ओर आपकी सदय दृष्टि होनी कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। उन दिनों गुरुजी के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम्पादन में आरा नागरी-प्रचारिणी सभा से पुस्तकें प्रकाशित होती थीं। 'तर्कशास्त्र' नाम की भी एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। एक बार सभा में एक विशेष बैठक का आयोजन हुआ था। उस बैठक में सम्मिलित हो आपने उक्त पुस्तक के लेखक को एक सुवर्णपदक से पुरस्कृत कर सम्मानित किया था। युगों की बात है, पूज्य गुरुजी के मुँह से मैंने सुना था कि जिस समय बाबू देवकुमारजी मृत्युशय्यापर पड़े हुए अन्यान्य अपनी संस्थाओं के लिए निर्बाध स्थायी रूप से मिलनेवाली मासिक वृत्ति के निमित्त अपनी लाखों की भूसंपत्ति अन्तिमवृत्ति दानपत्र (Endowment) में लिखवाकर उसे राजमुद्रांकित (Registered) कर रहे थे, उस समय उन्होंने आरा नागरी-प्रचारिणी सभा को भी यादकर मुझे बुलवाया था; किन्तु पार्श्ववर्ती लोगों ने टालमटूल कर दिया। अन्यथा सभाके लिए भी कुछ न कुछ मासिक वृत्ति की स्थायी व्यवस्था अवश्य कर देते। जो हो, आपकी अन्तिमावस्था की सच्चेष्टा ने हिन्दी की व्यापकता तथा प्रामाणिकता के प्रसार के लिए अलक्षित रूप से अमूल्य तथा असीम साधन "जैन-सिद्धान्त-भवन" (The Central Jain Oriental Library) में इकट्ठा रक्खा है। यहाँ हिन्दी के प्राणस्वरूप अपभ्रंश की अपूर्व निधियाँ संचित हैं जो देशी भाषाओं की एक सबल शृंखला है। साथ ही इस "जैन-सिद्धान्त-भवन" को प्राक्कालीन विषयकोविदों की जिज्ञासा-पिपासा की परितृप्ति के लिए उनके साध्य की सिद्धिका असाधारण साधन समझना कोई अत्युक्ति नहीं कहा जायगा।

आप धार्मिक शिक्षा तथा संस्कृत-प्रसार के प्रबल पक्षपाती थे। क्योंकि आपने बच्चों को धर्मशिक्षापूर्वक संस्कृत पढ़ाने के निमित्त पं० लालारामजी शास्त्री को बड़े आग्रह के साथ बुलाकर सम्मानपूर्वक रक्खा था। चौबीसों घंटे शास्त्रीजी की ही देखरेख में रहकर दोनों बच्चे कातन्त्रव्याकरण पढ़ते तथा धर्मशिक्षा ग्रहण करते थे। आपकी हार्दिक इच्छा रहती थी कि आरा की जैन जनता अपनी सामाजिक एवं धार्मिक रीति-नीति की विशुद्ध परम्परा का पालन करने में कभी शिथिलता नहीं आने दे। क्योंकि आप कहा करते थे कि अपने धर्मका मर्म नहीं जानने एवं दैनिक कार्य-क्रम में धर्मको प्राधान्य नहीं देने से भारतीयता की समुज्ज्वल प्रभा सदा के लिये निर्वाणप्रायः हो जायगी। अंग्रेजी-दाँ लोगों से बातें करने में बड़ी दृढ़ता एवं निर्भीकता से कहा करते थे कि भारतवर्ष की आध्यात्मिकता एवं संस्कृति के सुललित सुवर्णसूत्रको पाश्चात्यशिक्षा-दीक्षित बहुसंख्यक भारतीय अपने कन्धे से उतार फेंकने में ही अपनी नव्य भव्यता तथा आत्मसम्मान-वृद्धि की समुचित सुव्यवस्था समझते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सच बात तो यह है कि पूर्व पुरुषों के सुसंस्कार अथवा कुसंस्कार आगे आनेवाली पीढ़ियों में अलक्षित रूप से संक्रान्त होते रहते हैं। और उन संस्कारों का ह्रास अथवा विकास मात्रानुसार हुआ करते हैं। आपके पितामह बाबू प्रभुदासजी संस्कृत के मर्मज्ञ तथा धर्मप्रवण व्यक्ति थे। यह रहस्य मुझे तब ज्ञात हुआ जब मैं "जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा" में पुस्तकाध्यक्ष के पदपर रहकर स्वर्गीय सेठ पद्मराज रानीवाले के सम्पादन में भवन से निकलनेवाले "जैन-सिद्धान्त-भास्कर" में निर्जीव-सी कुछ तुकबन्दियाँ और ऊलजलूल एकाध लेख भी दिया करता था। उसमें आदिपुराण के मंगलाचरण और प्रशस्ति भी मुझे देनी पड़ी। भवन में संरक्षित आदि-पुराण की प्रति बड़ी जीर्ण-शीर्ण थी। उसे बार-बार उलटते-पुलटते मुझे देखकर बाबू साहब के पूज्य मामा बाबू बच्चूलालजी ने कहा कि पंडितजी आदिपुराण की इसी प्रति का चि० निर्मलकुमार के प्रपितामह बाबू प्रभुदासजी प्रतिदिन स्वाध्याय करते थे। और सब लोग उन्हें पण्डित कहा करते थे। यही कारण है कि परम्परागत यह संस्कार उत्तरोत्तर विकासोन्मुख दृष्टिगोचर हो रहा है।

एक उल्लेखनीय बात मैं भूल ही रहा हूँ। बात यह थी कि काशी की यशोविजय श्वेताम्बर जैन पाठशाला के अधिष्ठाता परम विद्वान् तथा प्रकृत विरक्त श्री धर्मविजय-सूरिजी महाराज पाठशाला के १५–२० छात्रों तथा एक व्याकरणाध्यापक के साथ आरा में पधारे थे। यहाँ आपका शुभागमन कैसे हुआ था, यह मुझे ज्ञात नहीं। क्योंकि आरा में श्वेताम्बर श्रावक एक भी नहीं था। बहुत संभव है कि धार्मिक भावना से ओत-प्रोत बाबूसाहब आरा की जनता को कृतार्थ करने के लिए श्री सूरिजी महाराज को आग्रहपूर्वक यहाँ लिवा लाये हों। आप ही सूरिजी महाराज के अनन्य आतिथेय थे। श्रीसूरिजी चार-पाँच दिनों तक यहाँ रह गये थे। एक बड़े भारी जैनाचार्य आये हुए हैं, नगर में इसकी बड़ी धूम थी। श्री शान्तिनाथजी के विशाल मन्दिर के सुविस्तृत प्राङ्गण में प्रतिदिन आपका प्रवचन होता था जिसका सदुपयोग जैन-मंडली बड़ी श्रद्धा से करती थी। श्रीसूरिजी के विदाई के दिन बाबू साहब ने पूज्य गुरुजी को भी बुलाया। आपका अन्तेवासी मैं भला क्यों नहीं साथ में रहता? आपने श्री सूरिजी से परिचय दिया कि हमारे यह पं० जी विहार के गण्य-मान्य विद्वानों में है। और हम सबों का सौभाग्य है कि आप यहीं के रहनेवाले हैं। सूरिजी ने अपनी सहज शान्तिशीलताकी सुधाधारा प्रवाहित करते हुए जैनदर्शन तथा षड्दर्शन-सम्बन्धी विचार-विनिमय करके कहा कि आप जैसे सद्विवेचक विद्वान् ही जैन दर्शन के स्याद्वाद-सिद्धान्त के प्रति जो अन्यान्य ब्राह्मण विद्वानों के हृदय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में भ्रान्त धारणा घर कर गयी है उसे दूर कर सकते हैं। अन्त में गुरुजी से आपने कहा कि मेरे साथ में कुछ छात्र आये हुए हैं। इनकी आप परीक्षा लें। गुरुजी प्रत्येक छात्र से पाठ्य विषयक मार्मिक बातें पूछकर उनके संतोषजनक उत्तर से तो आप अत्यधिक प्रभावित हुए ही। अन्त में सब छात्रों को 'राजते महती सभा" यह समस्या पूर्ति करने को दी। सबों ने बहुत शीघ्र भावपूर्ण समस्या पूर्ति करके दे दी। किन्तु एक श्याम वर्ण प्रज्ञाचक्षुजी ने सब पूर्तियों से विशिष्ट वीररसाप्लुत अतएव ओजोगुण-गर्भित अपनी सुन्दर पूर्ति सिंहनाद स्वर में कह सुनायी। गुरुजी ने सूरिजी से कहा कि यह प्रज्ञाचक्षुजी कालान्तर में बड़े अपूर्व विद्वान् होंगे। यह दिव्य दृश्य देखकर उस समय बा० देवकुमारजी के रोम-रोम मानो हर्ष-गद्गद, भक्तिविह्वल एवं तन्मय से हो रहे थे। ज्ञात होता था कि आपकी धर्मप्रवणता तथा विद्यारसिकता रूपी उत्ताल तरंगमय तटिनी-पति अपनी मर्यादा का अब उल्लंघन करना ही चाहता है। अन्त में आपने प्रचुर मात्रा में बहुत मूल्यवान् द्रव्यादि से सभी छात्रों और अध्यापक महोदय को पुरस्कृत कर अपनी अनुत्तर उदारता एवं पुनीत-आतिथेयता का परिचय दिया। अन्ततागत्वा आपके भक्तिभरित तथा सात्विक आतिथ्य सत्कार और नैष्ठिकता से परम प्रसन्न एवं प्रभावित होकर सूरिजी ने कहा ही कि बाबू देवकुमारजी बड़े ही निश्छल एवं दूरदर्शी जैन धर्मात्मा हैं। यदि अन्यान्य धनी-मानी जैनी भी आप ही के समान धर्म और विद्या के प्रचार से समाजोत्थान की चेष्टा करें तो जैनधर्म का महत्व व्यापकता को धारण कर ले और "जैन" शब्द के पीछे जो श्वेताम्बर और दिगम्बर ये मतभेद सूचक शब्द जुड़े हुए हैं—कालान्तर में निरर्थक से जान पड़ने लगें।

दक्षिण प्रान्त हिन्दू और जैन धर्म का एक दुर्लङ्घ्य दुर्ग-सा है। अथवा सनातन भारतीय संस्कृति का एक जीता-जागता मूर्त्त प्रतीक उसे कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। मेरे संस्मरणीय बाबू साहब अपने प्रभविष्णु भ्राता के निधनजन्य औदासीन्य से उद्भ्रान्त से हो दाक्षिणतार्थ यात्रा की धुन में लग गये और अविलम्ब स्वजन परिजन दल-बल के साथ सपरिवार यात्रा को निकल ही तो पड़े। साथ ही वहाँ स्वामी नेमिसागरजी वर्णी का सम्मिलन सोने में सुगन्ध का काम कर गया। वहाँ आपकी दर्शनीय वस्तुओं में प्राथमिकता थी शास्त्र-भाण्डार की ही। धर्म की ज्ञानगरिमा का अनन्य साधन शास्त्रों को दीमक, कीड़ों—मकोड़ों का खाद्य बनते देखकर आपके रोंगटे खड़े हो गये। दक्षिण के शास्त्र-भाण्डार के अधिपति शास्त्रों का दर्शन कराना शास्त्रापमान समझते थे। किन्तु बहुत अनुनय-विनय करने तथा वर्णीजी के सहयोग से शास्त्रों के दर्शन करने में आपको अधिक अड़चन नहीं पड़ी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिस जैनधर्म का "देव, शास्त्र, गुरु" इन त्रिदेवों के अतिरिक्त दूसरा कोई आधार है ही नहीं, उसके एक महत्वपूर्ण सर्वोत्तम अंग (शास्त्र) की ध्वंसोन्मुखता देखकर भला किस धर्मात्मा का हृदय नहीं दहल उठेगा ? अस्तु, भाण्डारों में अरक्षित शास्त्रों की अपनी ओर से अलमारियों तथा वेष्टन के कपड़े का पर्याप्त प्रबन्ध कर वहाँ तात्कालिक रक्षा की व्यवस्था अपनी ओर से आपने कर दी। दक्षिण प्रान्तस्थ सभी शास्त्रागारों को आपने छान डाला। जहाँ जैसी आवश्यकता थी उसकी पूर्ति कर शास्त्ररक्षा करना ही एकमात्र ध्येय अपना बनाते हुए तीर्थप्रवास से आप लौटे। किन्तु स्वास्थ्य आपका साथ देने से विरत हो चला। अतः मृत्युमहोत्सव का दिवस निकटस्थ देखकर शास्त्ररक्षा-विषयक अपना अन्तिम उद्गार निम्नांकित रूप में प्रकट किया, जो भवन में संरक्षित आपके चित्र के नीचे अंकित है—

"आप सब भाइयों से और विशेषतया जैन समाज के नेताओं से मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि प्राचीन शास्त्रों और मन्दिरों और शिलालेखों की शीघ्रतर रक्षा होनी चाहिये, क्योंकि इन्हीं से संसार में जैनधर्म के महत्व का अस्तित्व रहेगा। मैं तो इसी चिन्ता में था, किन्तु अचानक काल आकर मुझे लिये जा रहा है। मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जबतक इस कार्य को पूरा न कर देता तबतक ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। बड़े शोक की बात है कि अपने अभाग्योदय से मुझे इस परम पवित्र कार्य के करने का पुण्य प्राप्त नहीं हुआ, अब आप ही लोग इस पवित्र कार्य के स्तम्भ-स्वरूप हैं, इसलिए इस परम आवश्यक कार्य का संपादन करना आप सबका परम कर्तव्य है।"

यह भीष्मप्रतिज्ञा आपने तीस वर्ष की अवस्था में की थी। जैन समाज के प्रति आपका यह कारुणिक अतएव मार्मिक निवेदन पढ़कर मुझे राम-वनवास की बात याद आ जाती है। अवध-नरेश राजा दशरथ की आज्ञा से राम, सीता और लक्ष्मण को सुमन्त ने रथ में बैठाकर वनमें पहुचा दिया है। वटवृक्ष के नीचे राजवेश-भूषाका परित्याग कर वटक्षीर से रामचन्द्रजी अपनी तथा लक्ष्मणजी की जटा की रचना कर तपस्वि-वेष की सज्जा से सज्जित होने लगे। उस समय वृद्ध सचिव सुमन्तजी ने यह दुर्दृश्य देखकर कहा है कि हा ! हन्त ! ! दुर्दैव ! ! ! जिन रघुवंशी राजाओं ने चौथेपन में राज्य का शासनभार अपने समर्थ पुत्रों को सौंपकर संन्यास निमित्त वनका आश्रय लिया था, उसी रघुकुल के ये नवांकुर दुधमुंहे बच्चे वन में तपस्वियों-जैसा बाना बनाकर रह रहे हैं। मैं जैन-सिद्धान्त-भवन में वर्षों लगातार लायब्रेरियन के पदपर रह चुका हूँ। तीर्थयात्रियों में बहुसंख्यक सहृदय जैन यात्री भवन में आपके चित्र के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नीचे समुद्धृत आपका हृदयद्रावक मार्मिक निवेदन पढ़कर रो पड़ते थे। और विवश हो मेरी भी आँखें भर आती थीं।

बाबू साहब बड़ी अबोधावस्था में अपने दोनों बच्चों को छोड़ गये थे।' किन्तु बाघ के बच्चों को सिखावे कौन ? यह जनश्रुति चरितार्थ हो रही है। आपके चि० पुत्र और पोते आपकी लक्ष्यसिद्धि के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं। इसके निदर्शन रूप आपके नामका देवाश्रम नामका सुविशाल प्रासाद तथा जैन-सिद्धान्त-भवन का भव्य भवन ही पर्याप्त है। आपकी अनुजबधू ब्रह्मचारिणी पण्डिता चन्दाबाईजी ने तो जैन-बाला-विश्राम द्वारा आपकी कीर्ति में चार चाँद लगा दिये हैं। सच पूछिये तो बाबू देवकुमारजी की वैद्युतरूप चेष्टा से सबके सब अनुप्राणित हो रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुमार का सफल स्वप्न

[रचयिता—श्री पं० कमलाकान्त व्याकरण-साहित्य-वेदान्ताचार्य, आरा]

१

अर्घ्य-सामग्री लिए
श्रद्धालुओं का वर्ग आता—
राज पथ पर अर्चना-हित
वासुपूज्य-महान की, था नगर शोभावान,
थी अनन्त चतुर्दशी की यामिनी अम्लान।

२

बाल-वनिता-वृद्ध-नर—
नारी, सभी होकर समुत्सुक
देखते पूजन-महोत्सव,
भव्य आरा नगर में था स्वर्ग ही साकार,
सम्मिलित थे अर्चना में मान्य देवकुमार।

३

हैं अनेक विभिन्न छविमय
हेम-शिखर विशाल देवालय—
नगर में सोभते, हैं—
पूर्ण श्रद्धायुक्त जनता, पर न प्रज्ञाशेष
सोच, देवकुमारजी को हुआ अतिक्लेश।

४

हो गया अवसान पावन—
अर्चना का, ले हृदय में—
भक्ति नव, सानन्द जनता—
आरती-अभिषेक करके गयी निज निज धाम,
इधर मानस में जगी कुछ भावना अभिराम।

५

हुए शय्यागत हमारे—
चरित नायक, भावना में—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यस्त उनका हृदय मानों
ध्यान में मग्न, प्रायः गयी रजनी बीत,
ब्रह्म-वेला में हुआ तब एक स्वप्न पुनीत।

६

"एक था प्रासाद अतिशय—
उच्च, उसमें थे बने नव—
नव प्रकोष्ठ सुभव्य एवं
बत्तियों से जगमगाये, किन्तु थे वे रिक्त,
धर्म-मानव था पड़ा, थे नयन जल से सिक्त।

७

रो उठा वह देख इनको,
कहा — दो अवलम्ब मुझको,
बाह्य मेरा रूप सुन्दर,
किन्तु अन्तर्शून्य होता जा रहा हूँ हाय!
ज्ञान-शास्त्रों के बिना हूँ हो रहा निरुपाय।

८

हो रहे थे कण्ठ-गत कुछ—
शब्द उनके सान्त्वनामय,
खुल गयी तब नींद, इससे—
जागने पर की प्रतिज्ञा-'धर्म हे साकार!
ज्ञान के हित मैं करूँगा सतत शास्त्रोद्धार।

९

जागते ही चकित होकर—
एक नूतन योजना-निर्माण—
करके आपने निज—
मन्त्रिवर के सामने तब रख दिया सानन्द,
था हृदय साह्लाद एवं हुआ परमानन्द।

१०

योजना वह बन गयी—
अंकुरित एवं पल्लवित—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होकर हमारे देश का—
सुमहान् शास्त्रागार अतिशय भव्य-नव्य तुरन्त,
शास्त्र-संग्रह में लगे श्रम और द्रव्य अनन्त।

११

छान डाला देश, भारत—
वर्ष का कोई न कोना—
रह गया अवशेष, जिसमें—
पड़ा दुर्लभ ग्रन्थ को, जिसकी न पायी थाह,
आपने सर्वस्व की भी की न कुछ परवाह।

१२

अब बताना था न—
विद्वानों तथा जिज्ञासुओं को,
वे सभी आने लगे—
सर्वत्र से स्वाध्याय करने, बढ़ी कीर्ति अपार,
आपका वह स्वप्न सुन्दर हो गया साकार।

१३

'बस' न इतने से हुआ, मन—
रम गया इस कार्य्य में तब—
तो नगर में 'नागरी' के
भी प्रचारों में लगे, बन गया एक समाज,
नगर के पश्चिम खड़ी है वह सभा ही आज।

१४

एक त्रिंशत् वर्ष की लघु-
आयु में इस दिव्य मानव ने-
किये शुभ कार्य जितने,
है गिनाने की न कविता-शक्ति मुझको प्राप्त,
यही श्रद्धाञ्जलि सुमन है भेंट,
गीत समाप्त।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

युगावतारी श्री बाबू देवकुमार

[ले०—श्रीयुत बा० अजित प्रसाद एम० ए०, एल-एल० बी०, लखनऊ]

परम पूज्य श्रद्धेय बाबू देवकुमारजी युगावतारी पुरुष थे, वह दिव्य रूप थे; कुमार बल्कि राजकुमार तो थे ही।

प्रचुर सम्पत्ति के स्वामी होते हुए भी धन से अनासक्त थे। वह अपनी पैतृक सम्पत्ति को धर्मार्थ धरोहर, अमानत समझते थे और अपने को उस सम्पत्ति का अमानतदार, मुनीम, खजानची खयाल करते थे।

उनका रहन-सहन सादगी का था, पर शरीर की कान्ति दिव्य थी। ऊँचा ललाट, चौड़ा वक्षस्थल, लम्बी भुजाएँ प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेती थीं। शरीर उनका दास था, उसे धर्मसाधन का निमित्त मानते थे। यह इन्द्रिय संयम का पालन करते थे। अपने ऊपर पूरा नियन्त्रण करना और वासनाओं से विरक्त रहना कुमार का नैसर्गिक स्वभाव था। मैंने कुमार का साहचर्य बहुत दिनों तक किया है। उनके गुण और स्वभाव की अमिट छाप आज भी मेरे हृदय पटल पर अंकित है। इनकी कार्य प्रणाली विचित्र थी। कठिन से कठिन कार्यों को भी बड़ी आसानी से कर डालते थे। इनकी वाणी में जादू था, श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर इनका भाषण सुनते रहते थे। जिस बात को यह कहते थे, उसे कर दिखाना तथा उसकी पूर्त्ति के लिये प्राणपण से लग जाना इनका स्वभाव था। कहना कम और कर दिखाना ज्यादा, सिद्धान्त का अक्षरशः पालन करते थे।

समाज की हितचिन्ता अहर्निश किया करते थे। तन, मन, धन तीनों द्वारा जैन समाज में शिक्षा-प्रचार करने, कुरीतियों का निवारण करने तथा समाज को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने में कुमार साहब ने अटूट श्रम किया है।

आपने भारतवर्ष के समस्त जैन-तीर्थों की यात्रा की; प्रत्येक स्थान की त्रुटियों का अवलोकन किया और शक्ति के अनुसार प्रचुर दान देकर सुव्यवस्था भी की। आप उन दानियों में नहीं थे, जो केवल अपने दान का ढिंढोरा पीटते हैं और दान के बदले में ख्याति प्राप्त करते हैं। आप काम करना जानते थे, नाम से सदा दूर रहे। जीवन के अन्तिम क्षण तक परोपकार करने में लगे रहे।

लक्ष्मीपुत्र होने के साथ कुमार साहब पर सरस्वती की असीम कृपा थी। जितना अच्छा आप भाषण देते थे, उतना ही अच्छा आप लिखते भी थे। आपके इन गुणों से मुग्ध होकर ही आपको महासभा के मुखपत्र जैन गजट का सम्पादक निर्वाचित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया गया था। आपने उस पत्र का सम्पादन जिस योग्यता और क्षमता के साथ किया वह पत्रकार जगत् में सर्वदा स्मरणीय रहेगा।

१२ जून १९०५ के दिन स्याद्वाद विद्यालय काशी की स्थापना के अवसर पर आपने अपने पितामह पं० प्रभुदास जी द्वारा निर्मित भदैनीघाट की विशाल धर्मशाला विद्यालय के पठन-पाठन, छात्रावास के वास्ते प्रदान कर दी, मासिक सहायता भी देते रहे, ध्रौव्य कोष में भी प्रचुर भेंट की तथा यावज्जीवन विद्यालय के मन्त्रित्व की जिम्मेदारी का भार सहते रहे।

जीवन के अन्तिम समय में कई महीने श्वास रोग से पीड़ित रहे। रोगावस्था में वर्णी नेमिसागरजी को धर्म साधन के सहायतार्थ सदा अपने पास रखते थे, बेहोशी की दवा सुंघाये जाने पर शास्त्रोपचार के अवसर पर सल्लेखना व्रत ग्रहण कर लिया; होश में आते ही अर्हत शब्द उच्चारण किया। भू शय्या ग्रहण की सर्व प्रकार का खाद्य, स्वाद्य, पेय, लेह्य आहार का त्याग कर दिया। ब्रह्मचर्य व्रत तो मुद्दत पहले से ही ले चुके थे। आपने अन्तिम श्वास तक स्तोत्रादि ध्यान से सुनते-सुनते चेतनापूर्वक, धर्म ध्यान निमग्न ५ अगस्त १९०७ की रात्रि को ३२ वर्ष की युवावस्था में देवगति प्राप्त की। अल्प जीवन काल में इतना जैनधर्म का प्रचार कर किया, जितना अन्य व्यक्ति ८० वर्ष में भी न कर सके।

सिकन्दर महान्, श्री शङ्कराचार्य, स्वामी रामतीर्थ, कुमार देवेन्द्र प्रसाद सब ३२ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवासी हुए। श्री मद्रायचन्द्र, जीसज क्राइस्ट, विख्यात कवि (Shelley) ३३ वर्ष में संसार से विदा हुए। श्री माणिकचन्द्र वकील खण्डवा ३६ वर्ष में देह छोड़ गये। स्वामी विवेकानन्द ने ३९ वर्ष में शरीर त्यागा।

जैन-सिद्धान्त-भवन आरा, अनुपम, अद्वितीय अखिल भारतीय संस्था है। वहाँ एक सुन्दर विशाल सदन में शीशे की शोभनीय अलमारियों में ताड़पत्र पर खुदे हुए प्राचीन जैनागम, तथा अर्वाचीन जैन तथा अजैन साहित्य, सुसज्जितरूप से स्थापित है। Central Jaina Oriental Library Arrah की व्यवस्था प्रशंसनीय है।

बाबू देवकुमारजी ने, और उनके पुत्र निर्मलकुमार, चक्रेश्वर कुमारजी ने कई गाँव की आमदनी आरा में श्री शान्तिनाथ जिनालय तथा अन्य धार्मिक संस्थाओं को समर्पित कर दी है। और उन संस्थाओं के सुप्रबन्ध की देखरेख रखते हैं। आरा जैनधर्म का पुण्य क्षेत्र है।

श्री बाबू देवकुमारजी के शुभ नामपर लेखक नत मस्तक होकर शत शत प्रणाम करता है। बाबू देवकुमार सदा जयवन्त प्रवर्तें जैन शासन की जय।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

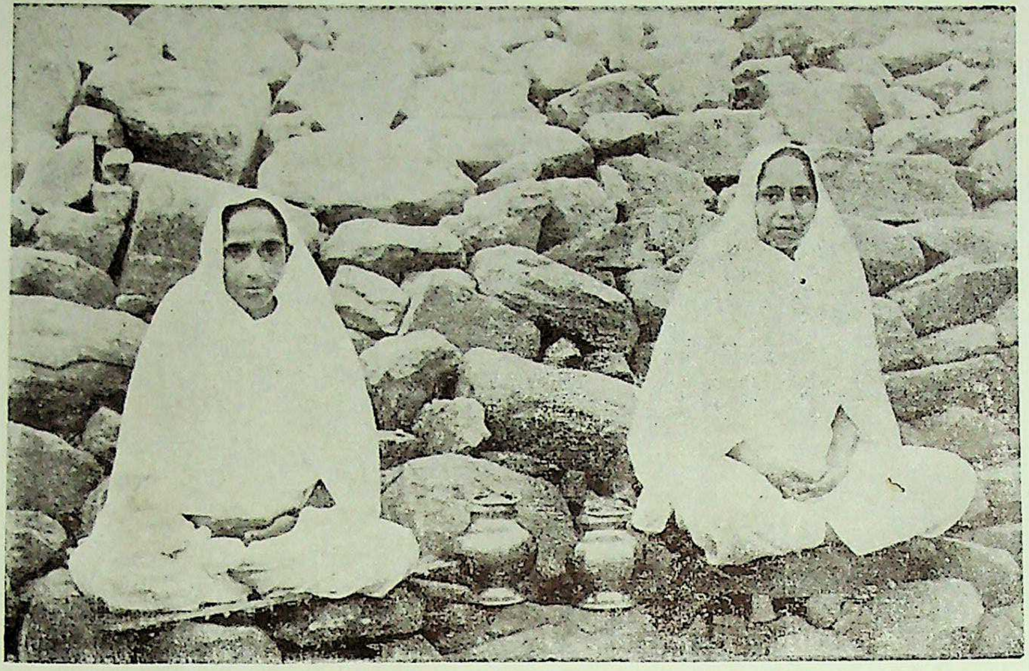

श्रीमती ब्र० अनूपमाला देवी,
धर्मपत्नी स्व० श्री बाबू देवकुमार जी

श्रीमती ब्र० पं० चन्दाबाई
अनुजवधू स्व० श्री बाबू देवकुमार जी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कतिपय मधुर संस्मरण

[ले०—श्रीमती ब्र० पं० चन्दाबाई अधिष्ठात्री, जैन-बाला-विश्राम आरा]

किसी भी पुण्य व्यक्ति के संस्मरण जीवन की सूनी, नीरस घड़ियों में मधु घोलकर उन्हें सरस बना देने में सक्षम हैं। मानव-हृदय, जो सतत वीणा के समान मधुर भावनाओं की झंकार से झंकृत रहता है, पुण्य चरित्रों के स्मरण से पूत हो रसानुभूति में निमज्जित होने लगता है। मानव की अमर्यादित अभिलाषाएँ नियन्त्रित होकर जीवन को तीव्रता के साथ आगे बढ़ाती हैं। फलतः पुण्य-पुरुषों के संस्मरण जीवन की धारा को गम्भीर गर्जन करते हुए सागर में विलीन नहीं कराते, बल्कि हरे-भरे कगारों की शोभा का आनन्द लेते हुए उसे मधुमती भूमिका का स्पर्श कराते हैं; जहाँ कोई भी व्यक्ति वितर्क बुद्धि का परित्याग कर रसमग्न हो जाता है और पर-प्रत्यक्ष का अल्पकालिक अनुभव करने लगता है।

स्वनाम धन्य स्व० श्री बाबू देवकुमारजी का पुण्य चरित्र ऐसा ही महान् है। आपका एक-एक संस्मरण अपने दिव्य आलोक से जीवन तिमिर को विच्छिन्न करने में सक्षम है। आपका जैसा सरल, शुद्ध, पवित्र और उदार हृदय कम ही व्यक्तियों का होता है। आप सादगी, सरलता, सहृदयता, मिलनसारता, पर दुःख कातरता एवं विद्वत्ता की मूर्त्ति थे। आपका व्यक्तित्व जैन जगत् की ही विभूति नहीं है, किन्तु समस्त हिन्दी जगत् और आर्य-जगत के लिये गौरव की वस्तु है। बाबूजी के महान् व्यक्तित्व के इतने मधुर स्मरण आज भी धूमिल स्मृति कोष में संचित हैं, जिनका यथार्थ चित्रण करना संभव नहीं। उनका प्रत्येक कार्य, चाहे वह छोटा था या बड़ा प्रेरणा और स्फूर्ति देने के लिये महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उनके कार्यों की सफलता का प्रधान कारण था, जीवन में धर्म को उतारना। उनका बहिरंग और अन्तरंग जीवन धार्मिक संस्कारों से ओत-प्रोत था। एक शब्द में उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाय तो यों कहा जा सकता है कि बाबूजी अन्तरंग में सदा बालक और बहिरंग में युवक थे। उनका हृदय सतत बालक के समान निर्विकारी रहा था। अपनी स्टेट का शासन कार्य करते हुए भी वे आवेश और आवेग से रहित थे। सांसारिक प्रलोभनों से वह कभी अभिभूत नहीं हुए। समाज को अपना परिवार समझना; समाज का उतना ही ध्यान रखना, जितना अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य की सुख सुविधा का ध्यान रखा जाता है, बाबूजी की विशेषता थी। बाबूजी बराबर कहा करते थे कि अपने लिये कीट-पतंग भी जीवित हैं; अतः यदि हमारा जीवन भी अपने ही उदर-पोषण में समाप्त हो जाय तो हमारी मानवता क्या रही? मानव का अर्थ ही है कि जो विचारशील हो और परस्पर में सहयोग रखता हो, जिसका प्रत्येक क्रिया व्यापार अपने समुदाय के हित के लिये हो।

हमें स्मरण है कि एकबार कोई जैनी भाई श्री सम्मेद शिखर के यात्रार्थ आरा आये हुए थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह आगन्तुक सज्जन जब कोठी में आये तो बाबूजी ने इनका स्वागत-सत्कार किया, दूसरे दिन जैन-तीर्थों की अव्यवस्था और कुप्रबन्ध को लेकर घण्टों चर्चा हुई। बाबूजी ने उन्हें आश्वासन दिया कि हम अपनी इस पर्याय में शास्त्र-संरक्षण और तीर्थ-संरक्षण अवश्य करेंगे। जैसे परिवार के व्यक्तियों का मेरी सम्पत्ति में अधिकार है, उसी प्रकार समाज का भी। समाज और परिवार को मैं भिन्न नहीं मानता हूँ। यदि हमारे आत्मोत्थान के प्रतीकों का अभाव हो जाय तो फिर हमारा जीवित रहना किस काम का है? श्री सम्मेद शिखर, राजगृह और पावापुर तीर्थों की व्यवस्था और संरक्षण का भार तत्काल अपने ऊपर ले लिया और उसी समय से जैन संस्कृति की रक्षा में संलग्न हो गये।

बाबूजी समाज का परिष्कार करना चाहते थे, उनका श्रमशील कलेवर समाज में क्रान्ति और सुधार करने के लिये आतुर था। लक्ष्मी के कृपापात्र होकर भी सरस्वती के भक्त थे तथा परिश्रम के ऊपर उनका अटल विश्वास था। उन्होंने समाज सुधार के लिये महासभा के मुखपत्र जैन गजट द्वारा आन्दोलन किया तथा बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह को समाज से दूर भगाने में सफलता भी प्राप्त की। वैयक्तिक चरित्र को उज्वल बनाने के लिये बाबूजी ने बहुत जोर दिया। वह सर्वदा कहा करते थे कि आदर्श व्यक्ति ही आदर्श समाज का निर्माण कर सकते हैं। उनके हृदय में समाज की वेदना का निर्मल स्रोता प्रवाहित होता था। इसी कारण समाज सुधार के लिये इतने अधिक व्यग्र थे कि उन्हें अहर्निश जैन समाज की कमियाँ दिखलायी पड़ती थीं।

बाबूजी का सम्पर्क मेरे जीवन के उत्थान में बड़ा भारी सहकारी है। उनकी साधुता की छाप मेरे ऊपर अमिट है। उनके अलौकिक और पावन जीवन का दिव्य प्रकाश आज भी मेरी अनेक समस्याओं का समाधान कर पथ प्रदर्शन कर रहा है। बाबूजी अपने कर्त्तव्य में कितने सजग थे तथा जीवन की यथार्थता का अनुभव किस प्रकार करते थे, यह निम्न संस्मरण से स्पष्ट हो जायगा।

सन् १९०५ के चैत्रमास में, जिस समय वसन्त अपनी प्रौढ़ अवस्था पर था। आम्र मंजरियाँ अपनी सुरभि द्वारा दिग्दिगन्त को सुरभित कर रही थीं। रंगीन भौंरे गन्ध-विभोर हो मधुपान का पुनीत पर्व मना रहे थे। वन वृक्ष पूरी तरह नवीन तरुण कलियों से लदे थे। मानव हृदय विश्वमाधुरी का पान कर अपनी सुध-बुध खो रहा था। जड़-चेतन सभी वासन्ती समीर से उद्बुद्ध हो अलसाई आँखें खोलने में संलग्न थे। पुष्प कलिकाएँ अलसित आँखें खोल वीरुध कुञ्जों को अपना सुरभित दान दे रही थीं। ऐसे सुन्दर सुहावने समय में बाबूजी आत्मचिन्तन के लिये अपने बगीचे के बँगले में गये। परिवार के अन्य सदस्य भी साथ में थे, किन्तु बाबूजी सर्वदा प्रकृति से आत्मोत्थान की प्रेरणा ही प्राप्त करते थे, उन्हें इसी कारण पवित्र और सुन्दर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एकान्त से अधिक प्रेम था। एक दिन प्रातः काल सूर्योदय होने के कुछ समय बाद तक आपका शयनगृह बन्द रहा। घरवालों को इससे चिन्ता हो गयी और कारण ज्ञात करने के लिये चेष्टा करने लगे। दम्मे की बीमारी के कारण यदा कदा आपका स्वास्थ्य खराब हो जाता था; अतः स्वास्थ्य खराबी की आशंका से सभी लोग चिन्तित हो गये और किवाड़ के झरोखे से झाँककर देखने लगे।

लोगों ने देखा कि अध्यात्म प्रेमी बाबूजी समस्त वस्त्रों का त्याग कर दिगम्बर मुद्रा में खड़े होकर सामायिक कर रहे हैं। बाबूजी के इस कृत्य से सभी लोग आश्चर्य में डूब गये और बड़े-बूढ़ों को आत्मग्लानि भी हुई कि सोचने लगे कि एक युवक इस प्रकार तपश्चरण करे और सब लोग इस अवस्था में भी आत्मशोधन से विमुख रहें, यह कितने परिताप का विषय है।

सामायिक समाप्त कर बाबूजी कमरे से बाहर आये और नित्यकर्म से निवृत्त हो पूजन-पाठ में लग गये। जब जलपान करने के उपरान्त लोगों ने उनसे पूछा कि आप अभी से इस प्रकार सामायिक क्यों करते हैं? श्री बाबू बच्चूलालजी ने हँसकर दो-चार कड़ुवी-मीठी बातें भी सुनायी। इस पर बाबूजी ने कहा कि इस नश्वर संसार में अपनी पर्याय का क्या विश्वास? गृह—कार्यों को अनासक्त भाव से करते हुए आत्मशोधन के लिये सर्वदा तत्पर रहना चाहिये। उन्होंने आत्म-विश्वास पूर्वक कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को होश संभालने के क्षण से लेकर मृत्यु के क्षण पर्यन्त सर्वदा सावधान रहना चाहिये। अन्तकाल तभी सुधर सकता है, जब पहले से अभ्यास रहे। मेरी आन्तरिक प्रेरणा सदैव आत्मशोधन के लिये प्रेरित करती रहती है। मेरा हृदय सतत कहता रहता है कि पौराणिक कथाओं में प्रतिपादित पात्र जिस प्रकार मेघाच्छन्न आकाश, प्रकाशहीन सायंकाल, चंचल पवन आदि के चांचल्य से विरक्ति की प्रेरणा प्राप्त करते रहते थे, उसी प्रकार इस मनोरम प्रकृति से अपने कल्याण की प्रेरणा क्यों नहीं प्राप्त करूँ। इस बाटिका में जब से मैं आया हूँ, मेरी सामायिक की क्रिया अबाध गति से निरन्तराय चल रही है, मुझे इसमें जो आनन्द आ रहा है, उसका मैं विवेचन करने में असमर्थ हूँ।

इस तपोवन सदृश बाटिका में तीनों काल आत्म-शोधन और इन्द्रिय नियन्त्रण के लिये मैं सामायिक करता हूँ। मैं इसमें अपने जीवन का प्रत्यावलोकन करता हूँ, अतीत जीवन को दुहराता रहता हूँ। जीवन-यात्रा के अन्तिम विराम-स्थल—पड़ाव पर पहुँचने के पूर्व मैं पीछे देखता हूँ कि कहाँ से चलकर किधर-किधर भूल-भटक कर आया हूँ। कहीं मेरी यह यात्रा, जीवन पथ के पहाड़, तराइयाँ, नदी-नाले, झाड़-झंखाड़ और आँधी-पानी के कारण अधिक लम्बी न हो जाय; और गन्तव्य स्थान को मैं विलम्ब से प्राप्त कर सकूँ अथवा मार्ग भूलकर इधर-उधर मारा-मारा घूमता फिरूँ। अतएव मैं सर्वदा जीवन-यात्रा के पाथेय—सामायिक को ग्रहण कर निराकुल रूप से इस दुर्गम पथ को तय करना चाहता हूँ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री बा० बच्चूलालजी जो साथ ही रहते थे, तथा अवस्था और रिश्ते में भी बाबूजी से कुछ बड़े थे, कहने लगे—लड़के होकर ये सब बुड्ढों की बातें छोड़ दो। तुम्हें मुनि नहीं बनना है, जिससे दिगम्बर होकर सामायिक करते हो। तुम एक जमीन्दार और रईस व्यक्ति हो, पूर्वजों की मान-मर्यादा की तुम्हें रक्षा करनी है; अतः मन लगाकर कामकाज करो। आज सन्ध्या को सभी लोग कोठी वापस चलेंगे; यहाँ अब रहने की आवश्यकता नहीं है। जब से तुम बगीचे में आये हो एक न एक ऊट-पटांग काम करते रहते हो, न मालूम तुम्हें क्या हो गया है? अब यहाँ से जल्द घर-कोठी वापस चलना होगा, यह मेरी आज्ञा है।

बाबूजी श्री बच्चूलालजी का बहुत सम्मान करते थे, बड़े होने के कारण उनकी आज्ञा पालन भी धर्म समझते थे। अतः सहमते हुए दबी जबान से इतना ही कहा—मामाजी मैं कोई बुरा काम नहीं कर रहा हूँ; मुनि होना सहज नहीं, बड़े सौभाग्य से इस पद की प्राप्ति होती है। यहाँ उन्मुक्त वातावरण और कोलाहल से दूर रहने के कारण मेरा मन सामायिक और आत्म-शोधन में ज्यादा लगता है और अब मेरी इच्छा आत्मकल्याण करने के लिये उत्कट हो रही है। हाँ, आप आज्ञा दे रहे हैं, तो मैं सभी लोगों के साथ आज ही कोठी चला चलूँगा।

वास्तविक बात यह थी कि इधर छः सात दिनों से दोपहर को बाबूजी किसी पेड़ के नीचे बैठकर एक घंटे तक सामायिक करते थे; कभी-कभी छाया के हट जाने से धूप भी उनके ऊपर चली आती थी। श्री बच्चूलालजी, जो कि उनसे अत्यधिक स्नेह करते थे, उन्हें धूप में बैठा देखकर रुष्ट हो जाते थे। स्वास्थ्य खराब रहने के कारण बाबूजी का धूप में बैठना श्री बच्चूलालजी को बहुत खटकता था। इसी कारण उन्होंने क्रोधित होकर कोठी चलने की आज्ञा दी थी।

× × × ×

तिथि स्मरण नहीं है, पर एक दिन बाबूजी के स्नेह और सेवा का एक दृश्य मैंने विचित्र देखा। बाबूजी का हृदय बहुत ही मृदुल था, दूसरे की तनिक भी पीड़ा उनसे देखी नहीं जाती थी। एक दिन एक गरीब यात्री कोठी में आया और मार्ग व्यय की याचना करने लगा। बाबूजी ऊपर थे, अतः वह श्री बच्चूबाबू के पास गया। श्री बच्चूलालजी भी बाबूजी की अनुपस्थिति में कुछ काम कर दिया करते थे। यात्री ने रोते-गिड़गिड़ाते अपनी स्थिति उनके समक्ष प्रकट की और मार्ग व्यय के लिये १०) दस रुपये माँगे। श्री बच्चूलालजी ने सर्वदा के अनुसार ५) रुपये का बिल पास किया। यात्री अंग्रेजी नहीं पढ़ा था, अतः वह बिल लेकर श्री चन्दी बाबू के पास आया और बिल देकर रुपये माँगने लगा। श्री चन्दीबाबू ने बिल लेकर ५) रुपये उसको दिये।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यात्री ने प्रार्थना की कि १०) रुपये से कम में मेरा काम नहीं चल सकता है अतः मैं ५) रुपये नहीं लूँगा। पहले तो उन्होंने उस यात्री को समझाया और कहा कि बिल जितने रुपये का पास किया गया है, उससे अधिक नहीं मिल सकते हैं। तुम एक बार इसे मालिक के पास फिर ले जाओ, यदि वह बढ़ा देंगे तो १०) रुपये दे दिये जायँगे। बेचारे भोले-भाले यात्री को विश्वास नहीं हुआ और वहीं १०) रुपये पाने के लिये गिड़गिड़ाने लगा। वह जितना रोता-गिड़गिड़ाता था, खजांची महोदय उसे उतना ही डाँटते थे। इससे कुछ हल्ला भी नीचे से सुनाई दिया। हल्ला सुनकर बाबूजी नीचे आये और यात्री की करुण कथा स्वयं बुलाकर सुनी।

उनका कोमल हृदय पिघल गया और यात्री से क्षमा माँगते हुए कहने लगे—भाई, आपको बड़ा कष्ट हुआ। मेरे कारण आपको कष्ट उठाना पड़ा, इसके लिये मुझे दुःख है। आप जितनी दूर जाना चाहते हैं, १०) रुपये में आपका काम नहीं चल सकेगा। इतने रुपये तो केवल टिकट खरीदने में लग जायँगे। खाने-पीने तथा अन्य खर्च के लिये १०) रुपये और चाहिये; तभी आप पहुँच सकेंगे। आप जैनी हैं, तीर्थयात्रा के लिये आये हैं अतः आप हमारे लिये पूज्य हैं। श्री सम्मेदशिखर की यात्रा करने से आत्मा पवित्र हो जाती है, पाप-वासनाएँ दूर भाग जाती हैं। अतः आपका सम्मान करना हमारा परम कर्त्तव्य है। पहले आप भोजन कीजिये, रसोई तैयार है; इसके पश्चात् आपका सारा प्रबन्ध हो जायगा। हमारा यह अहोभाग्य है कि आपने सेवा के लिये अवसर दिया। धर्मात्मा व्यक्तियों के दर्शन पुण्योदय से ही होते हैं।

बेचारा यात्री बाबूजी की बातों को सुनकर रोने लगा और उनके पैर पकड़ लिये तथा कहने लगा कि आप वस्तुतः देव कुमार हैं। बाबूजी ने यात्री को दो दिन तक अपनी कोठी में रखा, पीछे मार्ग व्यय देकर उसे रवाना किया।

बाबूजी ने अपने समय में किसी भी व्यक्ति को अपने यहाँ से निराश नहीं जाने दिया। जो भी उनके पास आता था, वह उसके साथ सौजन्यता का व्यवहार करते थे। दानी होने की अहंमन्यता उनमें नहीं थी। व्यवहार उनका इतना मधुर था, कि सम्पर्क में आनेवाले व्यक्ति उनसे सर्वदा प्रसन्न रहे। उनके देव तुल्य व्यवहार ने उन्हें लोकप्रिय बनाया था।

× × × ×

सन् १९०७ में हम लोग सपरिवार दक्षिण के तीर्थों की यात्रा के लिये रवाना हुए। रास्ते में बाबूजी के स्वभाव और गुणों का प्रकाश मुझे अत्यधिक मिला। इतने वर्षों के बाद भी आज उस समय की स्मृतियाँ हृदय-कपाटों को खोलने में सक्षम हैं। बम्बई से रवाना होकर जब हमलोग कुछ आगे चले तो एक तेरह-चौदह वर्ष का बालक भिक्षा मांगने के लिये हमारे डिब्बे में आया बाबूजी ने बड़ी आत्मीयता के साथ उससे बातें की और उसका कुल पता ठिकाना पूछा। बालक कहने लगा— कि मैं बम्बई प्रान्त के एक छोटे कस्बे का रहनेवाला हूँ। मेरे माता-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पिता का बचपन में देहावसान हो गया। मेरी देख-रेख मेरे एक चाचा करते थे। मैंने केवल चौथी कक्षा तक पढ़ा है, अधिक पढ़ने की मेरी तीव्र अभिलाषा है; किन्तु साधनों के बिना मैं नहीं पढ़ सका। मेरे साथ मेरी चाची का व्यवहार बहुत ही क्रूर था, अतः दिनरात उनका अन्याय, दण्ड मुझे सहन करना पड़ता था। एक दिन चाचा कहीं बाहर गये हुए थे, चाची ने मुझे भोजन भी नहीं दिया तथा खूब काम कराया। मेरा बाल-हृदय बगावत कर बैठा और मैं घर से चल पड़ा··· ··, कहाँ के लिये, इसका मुझे स्वंय परिज्ञान नहीं है। मुझे घर से निकले अभी पन्द्रह दिन हुए हैं। मैं भीख मांग कर अपने जीवन को खोना नहीं चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि कोई मुझे काम दे दें अथवा मेरे अध्ययन का प्रबन्ध कर दें।

बाबूजी को बालक की बातों का विश्वास हो गया और उससे पूछने लगे कि तुम पढ़ना चाहते हो, कितने रुपये महीने की आवश्यकता होगी? अपना पता नोट करादो, हम तुम्हें सहायता देंगे। आज से भीख माँगना बन्द कर दो, अच्छे लड़के भीख नहीं मांगते हैं; अतः किसी स्कूल में नाम लिखाकर पढ़ो। लौटने के बाद बाबूजी बराबर उस विद्यार्थी को सहायता भेजते रहे। शिक्षा के वह बहुत बड़े हिमायती थे।

× × × ×

जब हमलोग कारकल की धर्मशाला में पहुँचे तो बाबूजी ने श्री नेमिसागरजी वर्णी से कहा—महाराज जी! क्या हमारा जैन महिला समाज यों ही अज्ञानान्धकार में पड़ा रहेगा। हमारी आन्तरिक अभिलाषा है कि छोटी बहू पढ़-लिखकर नारी-जागृति का कार्य करे। इनकी पात्रता तो आपने इनके भाषणों से ज्ञात करली ही होगी। हमारा विश्वास है कि यदि इन्हें सुअवसर प्रदान किया जायगा तो निश्चय ही यह सेवा के क्षेत्र में आगे बढ़ सकेंगीं। आप आज इनकी परीक्षा लेकर देखिये, इनका अध्ययन कितना हुआ है।

श्री वर्णीजी विद्या व्यसनी थे ही, अतः बाबूजी की बातें सुनकर उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई और कहने लगे— आपकी छोटी बहूने इसी यात्रा में द्रव्य संग्रह और क्षत्र चूड़ामणि समाप्त कर लिये हैं। हिन्दी का परिज्ञान तो इनका बहुत अच्छा है, मैं इनकी परीक्षा क्या लूँ, मेरी मातृ-भाषा कन्नड़ है, अतः आपही इनकी परीक्षा लीजिये।

बाबूजी मुस्कुरा कर कहने लगे— महराज जी! हमारे यहाँ के पर्दे के रिवाज से आप सुपरिचित ही हैं; हम कैसे इनकी परीक्षा लें? अतएव विदुषी बहन मगन बाई जी से इनका साक्षात्कार करायेंगे और उन्हींसे इनकी योग्यता का परीक्षण भी। हम दूर बैठ कर इनका व्याख्यान सुनते हैं, बड़ा आनन्द आता है। बोलने की शैली बहुत सुन्दर है, विषय का प्रतिपादन बड़ी खूबी के साथ करती हैं। इसी कारण हम चाहते हैं कि इनका विकास हो और सेवा के क्षेत्र में यह बढ़ सकें।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बम्बई पहुँचने पर श्री मगनबाई जी ने भाषा विषयक ज्ञान की जाँच के लिये तुलसीकृत रामायण की कतिपय चौपाइयों का अर्थ पूछा। यथार्थ अर्थ सुनकर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए तथा उसी समय वर्णी जी ने संस्कृत की भी परीक्षा ली। बाबूजी इन परीक्षाफलों को अवगत कर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने दृढ़ संकल्प किया कि इन्हें प्रौढ़ विदुषी बनाने का प्रयत्न अवश्य किया जायगा। कुछ दिनों के उपरान्त धर्मशास्त्र का शिक्षण देने के लिये उन्होंने श्री पं० लालारामजी शास्त्री को आरा बुलाने के लिये पत्र लिखा तथा संस्कृत शिक्षा का पूरा प्रबन्ध किया।

बाबूजी की उदारता, सेवावृत्ति परोपकारता, शास्त्रीय ज्ञान, समाज की अहर्निश मंगल-चिन्ता और जैन संस्कृति के संरक्षण के लिये उत्कट भावना अनुकरणीय है। अपने परिवार से अधिक चिन्ता उन्हें समाज की थी। कभी-कभी रात को इसी चिन्ता के कारण नींद भी नहीं आती। घंटों बैठकर समाज के विकास और जैनधर्म के संरक्षण तथा प्रसार के लिये स्कीम बनाते रहते थे। श्री स्याद्वाद विद्यालय काशी को तो अपनी सन्तान से भी अधिक स्नेह करते थे। बाबूजी का सम्पर्क मुझे थोड़े दिन तक मिल पाया, परन्तु उतने से ही मुझे जो प्रेरणा मिली उसने मेरे जीवन की दिशा बदल दी।

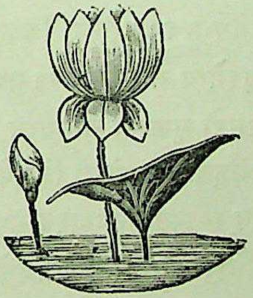

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रशस्तिः श्री देवकुमारस्य

(प्रस्तोता—श्री ब्रह्मदत्त मिश्रः, वेद-साहित्य-धर्मशास्त्राचार्यः)

श्रीमान् धनी देवकुमारजैनः आरा नगर्यां नितरां यशस्वी ।
आसीत् सदा धर्मविचारशीलः दिगन्तकीर्त्तिद्विजसाधुसेवः ॥१॥
श्वेताम्बरश्चापि दिगम्बरश्चः जैनौ द्विधा यद्यपि विश्रुतौस्तः ।
दिगम्बरस्यास्य तथापि कश्चित् न भेदलेशः हृदि सन्निविष्टः ॥२॥
मतद्वयस्यास्य समन्वयाय यत्नो महानस्य सदैव चासीत् ।
विलक्षणेयं प्रतिभा किलैवं अभिन्नभावस्य विभेदबुद्धिः ॥३॥
विद्या प्रचारेऽप्यथधर्मचारे उदारभावस्य किलस्य हिन्दी ।
भाषाप्रचारेऽविरतां प्रवृत्तिं सिद्धान्त गेहः सततं ब्रवीति ॥४॥
तीर्थाटने दक्षिणसंगमेऽस्य अरक्षिताः पुस्तकपुञ्जगेहाः ।
नैके सदा पुस्तकवस्त्रदानैः सुरक्षिताः कीर्तिमितो वदन्ति ॥५॥
सत्संगमेनार्जितपुण्य राशेः धर्मेमतिः संततमस्य चासीत् ।
देवालयाः जीर्णतमाद्यनेन चोद्धारिताः सन्ति पुरा कियन्तः ॥६॥
विद्यालयानां च सहायतायाः लोकप्रसिद्धा नहि वर्णनीया ।
कथा यतोऽतः प्रियसाधु वृत्तेः अहं कथं वर्णयितुं समर्थः ॥७॥
यच्छास्त्रचिन्तापरिचिन्तितार्थाः लोकोपकाराय सदा समर्थाः ।
कृतोपकारस्य यशोधनस्य करोमि किंतत् प्रतिकारमस्य ॥८॥
दीनाः सदा यद् गृहमेत्य नैके भिक्षन्ति तुष्टाः नितरां प्रसन्नाः ।
सदा शिष्टां राशिमहो गृणन्तः यान्तिस्म धन्यं कथयन्त एव ॥९॥
लक्षाधिकं रूप्यकमेहतोऽस्य संस्था विशेषे व्ययतिं करेण ।
पुरार्जितादर्थजनात् स्वहस्तैः निष्काश्य भक्त्या किल धर्मबुध्या ॥१०॥
समीपमागत्य च भिक्षुकगवावा विद्यार्थिनोवाप्यथ साधवो वा ।
अन्येऽपि ये केचन याचका वा परामुखा नैव यतो बभूवुः ॥११॥
वस्त्रान्नपानादिकपुस्तकादिदानेन तुष्टाः द्विजबालकाश्च ।
गृहीतविद्याः ह्यधुनार्जनेन कुटुम्बराशिं परिपालयन्ति ॥१२॥
आत्मा सुतो जायत एव वेदे लेखानुसारेण तदात्मजोऽयं ।
तदात्म रूपोऽप्यथनिर्मलादिं जातः कुमारः सुकुमारबुद्धिः ॥१३॥
पराजयं चेच्छति पुत्रतो यत् एतेन धर्मः पितुरर्जितोऽपि ।
भक्त्यासहस्रं गुणिश्चचकास्ति लोकोत्तरस्ते न च निर्मलोऽयम् ॥१४॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

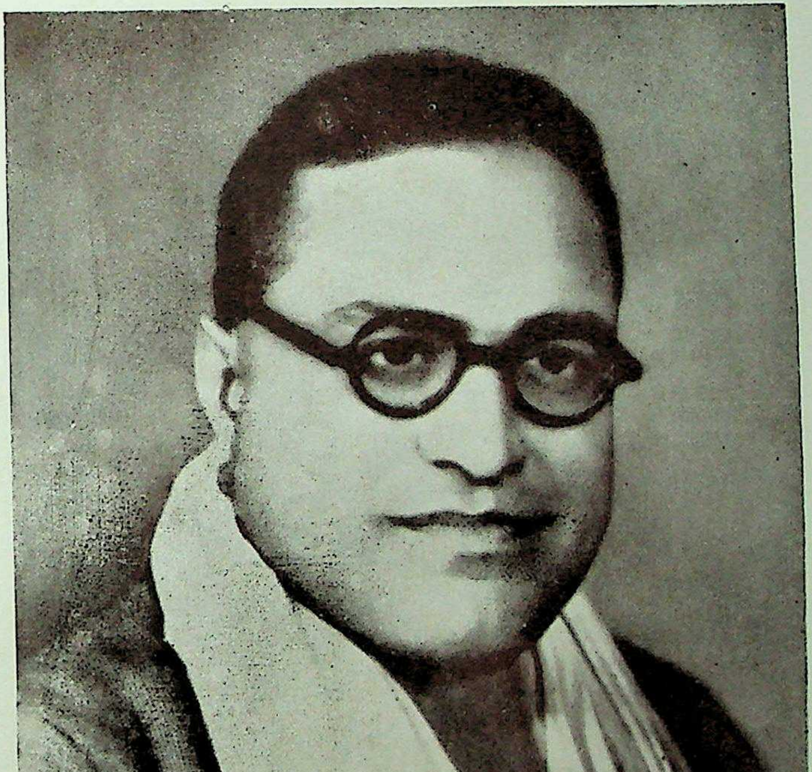

श्री बाबू निर्मलकुमार जैन, रईस
प्रथम पुत्र श्री स्व० बाबू देवकुमार जी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाबू देवकुमार जी की समाज को देन

[ले०—श्रीयुत् बा० छोटेलाल जैन, कलकत्ता]

इस परिवर्तनशील विश्व में उन्हीं का जन्म लेना सार्थक है, जो अपना अक्षय यश मृत्यु के उपरान्त भी इस लोक में छोड़ जाते हैं। श्री बाबू देवकुमारजी ऐसे ही मनस्वी थे, जिनका अपरिमित यश आज भी विद्यमान है।

चालीस वर्ष से अधिक की बात है, जिस समय मैं विद्यार्थी था। एक दिन पिताजी देरी से घर में पहुंचे तब माताजी ने पूछा कि आज कहाँ देरी हो गयी, तो कहने लगे कि आरा के एक बड़े धर्मात्मा प्रतिष्ठित घराने के ज़मींदार और विद्वान् चिकित्सा के लिये यहाँ आये हैं। और उनसे मिलने के लिये मैं कलकत्ते के कई लोगों के साथ गया था। रोग तो भयानक है किन्तु जैन समाज के भाग्योदय से ऐसे सज्जन की जीवन रक्षा हो जाये; यह सभी लोगों को हार्दिक भावना और चेष्टा हो रही है। इसके अतिरिक्त और भी कई बातें कहीं, जिन पर समय का आवरण पड़ चुका है। पिताजी प्रायः उनके पास जाया करते थे और मेरी बड़ी उत्कण्ठा होती रहती थी कि मैं भी उन्हें देख आऊँ, किन्तु पिताजी कह देते थे कि बालकों का काम वहाँ नहीं है।

कई दिन बाद पिताजी ने मुँगेर अपने एक सम्बन्धी को तार दिया कि तुरन्त एक घड़ा सीता कुण्ड का पानी भेजो। तार मिलते ही दूसरे दिन पानी पहुंच गया और पिताजी उसे देवकुमारजी के पास ले गये; डाक्टरों ने कहा था कि सीता कुण्ड का पानी दिया जाये तो शायद कुछ लाभ हो, पर लाभ कुछ न हुआ। और हठात् एक दिन इस नश्वर शरीर को छोड़कर चले गये। कलकत्ते में ही नहीं किन्तु सारे जन समाज में अत्यन्त शोक छा गया और उनके अनेक गुणों की चर्चा करते हुए लोगों ने बहुत ही दुःख प्रकट किया।

इस घटना के अनेक वर्षों के बाद जब स्वर्गीय बाबू करोड़ीचन्दजी जैन से परिचय हुआ और जैन-सिद्धान्त-भवन आरा से जैन-सिद्धान्त-भास्कर प्रकाशन के सम्बन्ध में उनसे बातें होने लगीं तब स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी के अनेक गुण और विविध कार्यों का परिचय मिला, जिसका प्रभाव मुझपर आज भी अमिट है।

इसके पश्चात् तो बाबू साहब के घराने से बहुत बन्धुत्व हो गया और फिर पूज्य ब्र० पं० चन्दाबाई जी और स्वर्गीय बाबू देवेन्द्र कुमारजी जैन से घनिष्ठ परिचय हो गया तब तो और भी स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी के अनेक गुण ज्ञात हुए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक बार पूज्य पं० चन्दाबाईजी अपनी दक्षिण यात्रा की बातें कहने लगीं, उससे मालूम हुआ कि आरा में रईसों के यहाँ बहुत ही अधिक पर्दा महिलाओं के लिये रखा जाता है, यहाँ तक कि रेल में चढ़ते समय डिब्बे के दोनों तरफ कनात लगाकर डोली से उतर कर स्त्रियाँ रेलपर चढ़ा करती थीं। तो भी उनके जेठजी दक्षिण यात्रा में विविध स्थानों के महिला समाज की सभा बुलवाकर उनका व्याख्यान करवाते थे और स्वयं किसी कोने की आड़ से व्याख्यान सुना करते थे। बाईजी की उज्ज्वल होनहारता को उन्होंने भली प्रकार समझ लिया था और यह भी समझा था कि जैन समाज की उन्नति के लिये 'स्त्रीशिक्षा' को कितनी आवश्यकता है। जबतक उनका जीवन रहा, बराबर बाईजी के अध्ययन और साहस वृद्धि का प्रयत्न करते रहे।

स्वर्गीय बाबू साहब ने स्वयं उच्चकोटि के विद्वान् होने के कारण यह भी अनुभव किया था कि बिना साहित्य प्रचार के कोई भी समाज और धर्म उन्नति नहीं कर सकता। इसकी पूर्त्ति के लिये जैन-सिद्धान्त-भवन आरा की योजना उन्होंने की और यह तो सभी जानते हैं कि बिना विद्वान् के न धर्म टिक सकता है न उसका प्रचार हो सकता है और इसकी पूर्त्ति के लिये काशी के श्री स्याद्वाद महा विद्यालय के लिये विशालभवन और आर्थिक सहायता प्रदान की थी।

उस समय के जैन समाज में न तो विद्या का विशेष प्रचार था और न विशेष विद्वान् थे और न विशेष संस्थाएँ; अतः स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजी बम्बई, स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी आरा और स्वर्गीय ब्र० शीतल प्रसाद जी की विविध सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों को बाद दे दिया जाय तो जैन समाज कुछ नहीं रह जाता। जो कुछ हम आज अपनी उन्नति देख रहे हैं उन कार्यों का बीजारोपण और पनपना इन तीनों ही स्वर्गीय आत्माओं की देन है।

आज स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी की दी हुई ४ अमूल्य निधियाँ हमारे पास हैं—(१) श्री स्याद्वाद जैन महा विद्यालय काशी, (२) श्री जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा (३) अनेक गुण सम्पन्न तपस्विनी महिलारत्न ब्र० पं० चन्दाबाईजी (४) दो पुत्र-रत्न— बाबू निर्मलकुमारजी और बाबू चक्रेश्वर कुमारजी, जिन्होंने जैनधर्म और समाज को तन-मन-धन से जो सेवाएँ अर्पण की हैं और कर रहे हैं वे सबको ज्ञात हैं।

अतः बाबू देवकुमारजी की जैन समाज को उपर्युक्त देन सर्वदा इस समाज के अक्षय कोष में संचित रहेगी, तथा समाज उनके उपकारों का निरन्तर स्मरण रखेगा। ऐसे स्वर्गीय महानुभाव और उपकारक के प्रति कृतज्ञता और श्रद्धांजलि अर्पण करना सभी का कर्त्तव्य है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

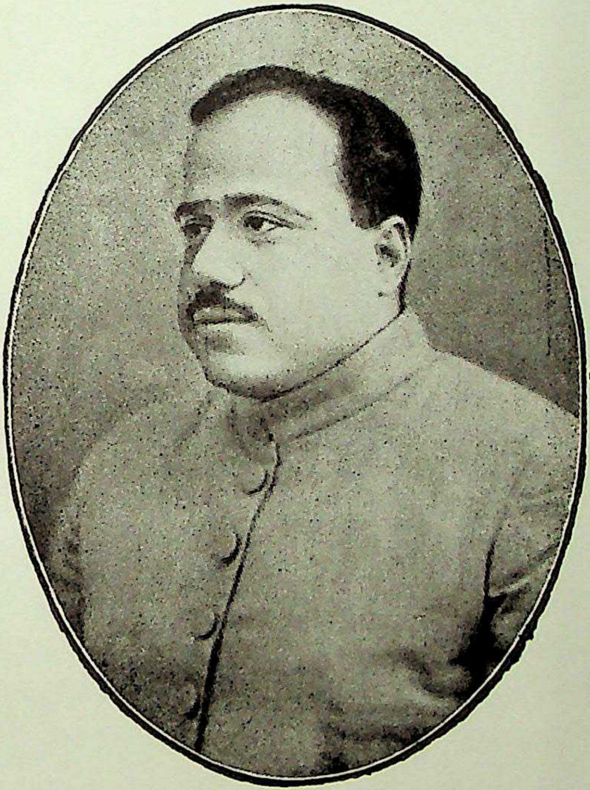

श्रीमान् बाबू चक्रेश्वर कुमार जैन, बी० एस सी०, बी० एल०,
द्वितीय पुत्र श्री स्व० बाबू देवकुमार जी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजर्षि बाबू देवकुमार

[ले०—श्रीयुत पं० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य]

अनासक्त कर्म योगी संसार में "जल तैं भिन्न कमल है" के समान निवास करते हैं। श्री बाबू देवकुमार जी भी ऐसे ही महात्मा थे, जिन्होंने अपनी मानव सुलभ शक्तियों का विकास कर समाज में श्रद्धास्पद गौरव प्राप्त किया था। प्रायः देखा जाता है कि जो सम्पन्न कुल में उत्पन्न होता है, सुसंस्कृत समाज में पलता है, उच्चात्युच्च शिक्षा की सीढ़ियों पर चढ़ता जाता है, वह बहुधा असामान्य बन जाता है, उसकी गर्वानुभूति में 'अहं' का भाव घर कर लेता है, उसके मन-वचन-कर्म में सम्पन्नता और भद्रता का दर्प तथा वैभव की विलासिता धूप-छाँह की तरह झिलमिलाती रहती है; किन्तु बाबू साहब का व्यक्तित्व इससे भिन्न था। आपके व्यक्तित्व वृक्ष के पुराने पत्ते झड़ गये थे, रईसों की विलासिता और जमीन्दारों का आक्रोश आपको छू भी नहीं गया था। विद्या-बुद्धि वरेण्य बाबू साहब गृहस्थी और जमीन्दारी के द्वन्दों में पड़कर भी भस्मावृत्त अंगारे के समान जाज्वल्यमान थे, विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता के मणिकाञ्चन संयोग ने परिस्थितियों के ग्रहचक्र में भी आपको सदा ध्रुव नक्षत्र रखा।

१७–१८ वर्ष की अवस्था में जब जमीन्दारी का भार बाबू साहब ने अपने सबल कन्धों पर धारण किया, उस समय रागारुण सूर्य ने अपनी सहस्र रश्मियों के मणिदीपों को संजोकर आरती उतारी, मुक्तकुन्तला प्रकृति ने उल्लास से भरकर मधुर राग अलापा। प्रकृति के अणु अणु को विश्वास था कि यह युवक "यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वं" को प्राप्त कर निश्चय ही राग-रंग में लीन रहेगा; पर बाबू साहब सचमुच में राजर्षि रहे। आपकी पवित्रता से भयभीत हो वैभव का मद आपका स्पर्श भी न कर सका; रईसों के चोचलों ने आपके पास फटकने का साहस भी नहीं किया। यद्यपि आपके अभिभावकों और हितैषियों ने सभी प्रकार की विलास सामग्री एकत्रित की थी। शीत, उष्ण और वर्षा ऋतु पर विजय पाने एवं मनोरंजन के लिये नाना प्रकार के मोहक कृत्रिम साधन संकलित किये गये थे, पर विवेकी बाबू साहब अनासक्त रहे। इन साधनों ने विलासिता के बदले आपमें विरक्ति ही उत्पन्न की। गृह कार्य करते हुए भी संसार से अलिप्त रहे। साधन सामग्रियाँ भोग के स्थान में राजयोग का कारण बनीं। बाबू साहब पक्के राजयोगी थे, विलास वैभव आपको सर्वथा हेय नहीं प्रतीत हुआ; किन्तु आप इसके बीच रहकर भी साधना के मार्ग में रत रहे।

आप बचपन से ही विचारशील और एकाग्रचित्त रहते थे। दृष्टिगत होने वाले

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पदार्थों का सूक्ष्म दृष्टि द्वारा निरीक्षण करना और उन पर गम्भीर विचार करना आपका सहज स्वभाव था। सच है कि सदैव विचारशील रहे बिना किसे महत्ता प्राप्त हुई है ? अतएव आप युवावस्था के सुख भोगते हुए भी यौवन क्या है ? इसके आरम्भ और अन्त में क्या है ? मनुष्य केवल स्वोदर-पोषण के लिये जीवित है या समाज के प्रति भी उसका कुछ कर्त्तव्य है ? मानव जीवन की सार्थकता क्या है ? जैन संस्कृति को किस प्रकार जीवित रखा जा सकता है ? आदि प्रश्न पहेलियों पर निरन्तर विचार करते रहते थे। यद्यपि आपने महात्मा बुद्ध के समान महाभिनिष्क्रमण नहीं किया था, घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार छोड़ा नहीं था; पर सम्राट् भरत के समान अलिप्त रहकर आप आत्म-ज्योति प्रज्वलित करते रहे। घर छोड़ कर साधु बन जाना सरल बात है, पर घर में रहते हुए अनासक्त रहना अत्यन्त दुष्कर और अभ्यास साध्य। इतिहास और शास्त्रों के पन्ने उलटने पर भी ऐसे उदाहरण इने गिने ही मिलते हैं, जिनमें अनासक्त कर्म योगियों का जीवन चरित्र प्रतिपादित किया गया हो। अधिकांश उदाहरणों में घर छोड़ वन में आत्म-शोधन करने की बात कही गयी है। बीसवीं शताब्दी में जैन समाज में आप जैसा राजर्षि, जिसके हृदय में समाज की वेदना, जिसकी आँखों में समाज के आँसू और जिसके मस्तिष्क में समाज कल्याण की चिन्ता वर्तमान हो, दूसरा नहीं हुआ। समाज के दुःख-दैन्य, आडम्बर, अज्ञान, कुरीतियाँ आदि का आपने यथार्थ अनुभव किया; अतः जमीन्दारी के शासन का भार ग्रहण करने के साथ ही आप समाज परिष्कार में लग गये।

बाबू साहब ने अपनी भावना-प्रवण अंगुलियों से निर्मल तूल की बत्तियाँ बटकर उन्हें लघु दीपक में संजोया और अपने तन-मन-धन की स्नेह धारा से सिक्त कर एवं युग-युग से संचित अरमानों की लहलहाती लौ से लगाकर समाज और साहित्य के घने अन्धकार को विच्छिन्न किया। आपने अपने भावों के तुमुल आवेग से भरे करों द्वारा अर्चना थाल को उठाकर जैनतीर्थों की आरती उतारी। जिन पवित्र तीर्थों को पण्डे और पुजारियों ने अपनी पण्डागिरी द्वारा बदनाम कर दिया था, जहाँ वीतरागी प्रभु की विडम्बना की जाती थी, वहाँ बाबू साहब ने सात्त्विकता का प्रचार किया तथा मिथ्यामार्ग को सम्यक्त्वमार्ग के रूप में परिवर्तित किया। मन्दारगिरि सिद्धक्षेत्र को, जहाँ से वासुपूज्य भगवान् ने निर्वाण लाभ किया है, पण्डों ने अपनी चालबाजी से हथिया लिया था। बहुत दिनों तक इस जैनतीर्थ को पण्डे लोग धनार्जन के लोभ से अजैनतीर्थ घोषित करते रहे; परन्तु आपने इस निर्वाण भूमि को मुकदमा लड़कर पुनः अपने अधिकार में किया तथा इस क्षेत्र की सुव्यवस्था का प्रबन्ध भी किया। दक्षिण भारत के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जैनतीर्थों की सुव्यवस्था में आपने अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

जैन समाज में व्याप्त अविद्या और अज्ञान के साम्राज्य को मिटाने में आपका अथक परिश्रम इतिहास में सर्वदा स्मरणीय रहेगा। आपने अपनी सम्पत्ति का अधिकांश भाग अज्ञान को दूर करने और ज्ञानके प्रसार करने में व्यय किया। अध्ययनशील अनेक छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दीं, उच्च अध्ययन के लिये पुरस्कार दिये एवं विद्या मन्दिरों की स्थापनाएँ कराईं। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध जैनतीर्थ श्रवणबेलगोल के विद्यामन्दिर की स्थापना में आपका सहयोग प्रशंसनीय रहा था। श्री स्याद्वाद दि० जैन महाविद्यालय काशी के संस्थापकों में आपका नाम अग्रगण्य है। आपके मन्त्रित्व काल में ही इस ज्ञान मन्दिर ने स्थिरता प्राप्त की तथा उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। आप की इस विद्या प्रचार की वृत्ति और प्रवृत्ति का जैन समाज को असाधारण लाभ मिला।

बाबू साहब में ज्ञान प्रचार की बुभुक्षा इतनी प्रबल थी कि आप निरन्तर सार्वजनिक ज्ञान-संस्थाओं की सेवा और संरक्षण में संलग्न रहते थे। आरा नागरी प्रचारिणी सभा के आप अनन्यतम सहयोगी रहे थे, उसके वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष पद से आपने जो मार्मिक भाषण दिया था, वह आज भी हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के लिये नवीन है। आपने इस संस्था को आर्थिक सहयोग तो प्रदान किया ही, साथ ही अपना सक्रिय सहयोग देकर इस हिन्दी हितैषी संस्था को हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा के लिये प्रोत्साहित किया। विहार-बंगाल जैन यंगमेनस् एसोसियेशन के अध्यक्ष रहकर आपने समाज की अपूर्व सेवा की। यह संस्था अपने युग की जीती-जागती जीवट संस्थाओं में से एक थी। बाबू साहब तथा आपके कई मित्रों की अपूर्व कार्य क्षमता के कारण इस एसोसियेशन का प्रधान कार्यालय आरा में ही रहा। बाबू साहब समय-समय पर इसकी पुष्कल धन द्वारा भी सहायता करते रहे। जैन समाज में आपस के विरोध को मिटाने में इस संस्था ने बहुत बड़ा काम किया था। नवीन साहित्य के निर्माण के लिये इस कर्मठ एसोसियेशन से कई पुरस्कार घोषित किये गये। इस एसोसियेशन ने जैन समाज की कुरीतियों के निवारण और संगठन विधान का कार्य बड़े ही उत्तम ढंग से सम्पन्न किया।

बाबू साहब के व्यक्तित्व में सरलता, सादगी, सहृदयता, उदारता, विद्वत्ता, मिलनसारिता, परोपकारवृत्ति आदि विशिष्ट गुणों का अद्भुत मिश्रण था। आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही तत्कालीन सरकार ने आपको ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किया था। इस पद का निर्वाह आपने जिस क्षमता से किया, उसके प्रमाण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वरूप गवर्नर जरनल, कमिश्नर साहब आदि द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र आज भी विद्यमान हैं। एक बार भी जो आपके सम्पर्क में आ जाता था, आपके सहृदय व्यवहार से सदा के लिये प्रभावित हो जाता था। छोटे-बड़े, गरीब-अमीर आदि सभी के प्रति आपका सहज स्नेह इतना आदरमय होता था कि वह आपका अपना बन जाता था। श्री सम्मेदशिखर की यात्रा करने वाले सैकड़ों यात्री प्रतिवर्ष आपके सम्पर्क में आते और सभी आपके व्यवहार, सम्मान आदि से सन्तुष्ट होकर आपकी प्रशंसा करते हुए लौटते। उस समय के यात्रियों में आज जो जीवित हैं, वे बाबू साहब के सम्बन्ध में कितनी ही अद्भुत बातें बतलाते हैं। गतवर्ष पर्यूषण पर्व के अवसर पर जब मैं अजमेर गया था तो वहाँ पर जयपुर निवासी वयोवृद्ध श्री पं० जवाहर लाल जी शास्त्री ने मुझे बाबू साहब के विषय में कई विलक्षण बातें बतलायीं। आपने बाबू साहब के मार्दव और आर्जव गुण को अभिव्यंजित करने वाली निम्न घटना सुनाई।

सन् १९०३ की बात है, बाबू साहब अपने सीमित परिवार तथा मुनीम, कर्मचारियों के साथ श्री सम्मेदशिखर की वंदना के लिये गये। आप वहाँ रात में लगभग १२ बजे पहुंचे। कोठी के दरवाजे पर साथ के कर्मचारियों ने कई आवाजें लगाईं, पर दरवाजा न खुल सका। साथ के मुनीम जी ने जब बहुत हल्ला मचाया, तब दरवाजा खुला। उन दिनों बीस पन्थी कोठी के कार्यों का संचालन बाबू साहब के तत्त्वाधान में ही होता था तथा अध्यक्ष होने के कारण उनका कर्मचारियों पर विशेष प्रभाव था। जब मुनीम पन्नालालजी को बाबू साहब के आने का समाचार मिला तो वह बेचारे आँखें मलते हुए बाबू साहब के पास आये, तथा बाबू साहब से दरवाजा देर में खुलने के लिये क्षमा याचना करने लगे। बाबू साहब ने उलटे हाथ जोड़कर उनसे क्षमा मांगी और कहा— पुण्योदय से इस क्षेत्रके दर्शन होते हैं, मुझसे आपको अधिक कष्ट हुआ है। मेरे साथ के व्यक्तियों ने इस माघ की रात में आपको कष्ट दिया। मैंने तो बाहर रहने की सलाह दी, पर ये लोग माने नहीं। मैं बार-बार आपसे क्षमा याचना करता हूं। मैं यहाँ पुण्यार्जन के लिये आया हूं, किसी को कष्ट देने या स्वयं अशान्त होने के लिये नहीं। इस घटना से बाबू साहब के व्यक्तित्व का बहुत कुछ परिचय मिल जाता है। संसार भोगों से आप कितने उदासीन थे तथा जैन साहित्य, जैन संस्कृति और जैन समाज का दर्द आपके हृदय में कितना था, यह इतने से ही स्पष्ट है कि आपने मात्र २९ वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था। आपने प्रतिज्ञा की थी कि मैं जबतक अन्धकाराच्छन्न जैन शास्त्रों, जैन शिलालेखों, ताम्र पत्रों आदि का संकलन कर समुचित व्यवस्था न करा दूँगा, अखण्ड ब्रह्मचारी रहूंगा। संसार के ऐश्वर्य का त्याग कर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संयमी का जीवन व्यतीत करूँगा। इस कार्य की पूर्त्ति के लिये आपने प्रचुर सम्पत्ति का व्यय किया। समग्र भारत में प्रचारकों और अन्वेषकों को भेजकर जैन शास्त्रों का संकलन कराया। अनेक शास्त्रागारों की सुन्दर व्यवस्था की तथा नष्ट होने से अनेक ग्रन्थगारों को बचाया। आपने केवल मन्दिर और धर्मशालाओं का ही निर्माण नहीं कराया, प्रत्युत सरस्वती भवन जैसी सांस्कृतिक संस्थाएँ भी स्थापित कीं। वणिक् वंश में जन्म लेने पर भी आपमें क्षत्रियोचित उदारता थी। अहिंसा धर्म के प्रचार के लिये आपने अपनी एक आसामी को दस बीघे जमीन पुरस्कार में दे दी थी। वृद्ध पुरुषों से मालूम हुआ कि उस व्यक्ति ने आरम्भ में अहिंसा धर्म का प्रचार किया, पर अन्त में उसने अहिंसा धर्म का प्रचार छोड़ दिया। परिणाम यह निकला कि वह व्यक्ति पागल होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। बाबू साहब ने इसी प्रकार ८० बीघा जमीन जैनधर्म के प्रचार के लिये और भी दान की थी। राजाओं के समान प्रसन्न होकर कई व्यक्तियों को आपने जागीरें भी दी थीं। आज भी जागीर पाने वालों के वंशज बाबू साहब का गुणगान कर रहे हैं। बाबू साहब उन दानियों या समाज सेवियों में नहीं थे, जो नाम कमाने के लिये दान देते हैं या अपने दान का ढ़िढोरा पीटते हैं। आपके दान को कोई जानता भी नहीं है. आप चुप-चाप सहायता करने वाले निस्वार्थी, यश की आकांक्षा से दूर रहने वालों में थे। आपके पास ऐसी एक भी वस्तु नहीं थी, जो समाज के कल्याणार्थ अदेय हो। आप अपना सर्वस्व समाज हित के लिये समर्पित कर चुके थे।

बाबू साहब की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी, आप उन युगनिर्माताओं में से थे, जिन पर समाज और देश को गर्व होता है। आप जैन शासन और जैन संस्कृति के सतत जागरूक प्रहरी थे। समाज की आपने निस्सीम एवं निस्वार्थ सेवाएं की हैं, आपके इस महान् ऋण से समाज कभी भी मुक्त नहीं हो सकता है। आपकी लोकोत्तर सेवाएँ धार्मिक और सामाजिक इतिहास में सर्वदा अमर रहेगीं। समाज के अजातशत्रु होने के कारण बाबू साहब का प्रत्येक कार्य समाज प्रगति का कारण बना। आज का जैन समाज सेठ माणिकचन्द पानाचंद बम्बई तथा बाबू साहब के द्वारा निर्धारित रूपरेखा पर ही चल रहा है। सचमुच में भौतिक ऐश्वर्य के बीच रहकर अलिप्त रहने वाले राजर्षि संयमी बाबू देवकुमार जी जैनों के चक्रवर्ती भरत और वैष्णवों के महाराज जनक थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रद्धाञ्जलियाँ

युग प्रवर्तक—

इस युग में जैन समाज का निर्माण जिन व्यक्तियों द्वारा हुआ है, उनमें श्री बाबू देवकुमारजी का स्थान सर्वोच्च है। आपने तन-मन-धन से समाज का उत्कर्ष किया। आपका तेजस्वी व्यक्तित्व, परोपकारी स्वभाव और सेवा की लगन आज भी समाज की प्रगति में सहायक हैं। आप उन गिने-चुने व्यक्तियों में थे, जिनपर कोई भी देश या सामाज गर्व कर सकता है। रईस-अमीर होते हुए भी आपने जनता की समस्त आवश्यक सेवाओं में योगदान दिया। विद्याप्रचार, शास्त्रोद्धार, तीर्थोद्धार एवं जैन समाज के संगठन में आपने अद्भुत कार्य किया था। धनी-मानी होने के साथ-साथ आप उच्चकोटि के विद्याव्यसनी और शास्त्रज्ञ विद्वान् थे। वस्तुतः आपकी सेवाएँ अकथनीय और अनुकरणीय हैं।

बाबू देवकुमार मेरे घनिष्ठ प्रिय मित्र थे। जैन समाज के इस महान नेता की स्मृति से ही मस्तक श्रद्धावनत हो जाता है। अन्तःकरण के भावकंज मुकुलित हो आपके पादपद्मों में पहुँचने को लालायत हो उठते हैं। आपके आदर्श जीवन के सद्‌गुण मानवमात्र को प्रेरणा और स्फूर्त्ति देते हैं। महासभा के कर्णधार बनकर आपने बहुत समय तक जैन जाति के पोत का संचालन किया। जैन गजट के संपादक रहकर समाज को अपने विचारों का परिचय दिया और गिरी हुई दशा को सुधारा। जिस अवस्था में साधारण मानव विषय की ओर अन्धा बनकर दौड़ता है, आपने उसी युवावस्था में मात्र २९ वर्ष की आयुमें अखंड ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया, जिसका जीवन पर्यन्त पालन करने में रत रहे। आपकी दूर-दर्शिता, देव-शास्त्र-गुरु की अनन्यभक्ति, दानशीलता एवं त्याग जैन समाज के लिये युग-युगान्तर तक शुभ मार्ग दिखलाते रहेंगे। जैन संस्कृति और जैनधर्म के प्रसार के लिये बाबू साहब ने अपने युग में अथक परिश्रम किया था। मैं अपने इस अद्वितीय, आदर्श नेता की पुण्यस्मृति में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना परम धर्म समझता हूं। मेरा विश्वास है कि स्वर्ग में भी आपकी आत्मा जैन समाज के उत्कर्ष को देखकर आह्लादित हो रही होगी।

(रावराजा सर सेठ) हुकमचन्द स्वरूपचन्द इन्दौर

अनुकरणीय नेता—

"श्री देवकुमारजी सा० जैन समाज के महान सेवकों में से रहे हैं, जिन्होंने अपना जीवन समाज व धर्म के संरक्षण तथा संस्कृति के प्रचार में लगाकर समाज

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की सेवा की है। जैन-सिद्धान्त-भास्कर उनकी स्मृति में विशेषांक प्रकाशित कर रहा है, यह बड़े हर्ष की बात है। मैं देवकुमारजी के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ तथा आशा करता हूं कि उनके आदेश जीवन का अनुकरण कर समाज के भावी युवक लाभ उठावेंगे।"

(सरसेठ) भागचन्द सोनी, अजमेर

तीर्थभक्त--

जैन समाज को श्री बाबू देवकुमारजी ने अपने दान, ज्ञान और त्याग द्वारा जो प्रदान किया है, वह इतिहास में सदा अमर रहेगा। तीर्थभक्त और जिनवाणी की सच्ची सेवा करने वाले बाबू देवकुमारजी थे। जिन दिनों जैन समाज में कोई नेता नहीं था, समाज पथ-भ्रष्ट हो रहा था, उन दिनों बाबू देवकुमारजी ने समाज का नेतृत्व किया, जैन समाज को रास्ता बतलाया और उसे उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का कार्य किया। साधारण व्यक्ति जिस काम को १०० वष की आयु प्राप्त कर भी नहीं सकते हैं, उसी काम को उन्होंने मात्र ३१ वर्ष की अवस्था में पूरा किया। यह जैन समाज का दुर्भाग्य था, जिससे इतने बड़े महापुरुष को अल्पायु प्राप्त हुई। महासभा की प्रगति और उन्नति में भी आपका पूरा हाथ था, समाज और संस्कृति संरक्षण के लिये आप अन्त तक सचेष्ट रहे। मैं इस पुण्य पुरुष के चरणों में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूं।

रतनचंद जैन

महामंत्री, अ० भा० तीर्थक्षेत्र कमिटि, बम्बई

महान् नेता—

जैन-सिद्धान्त-भास्कर के अधिकारियों द्वारा हमें यह जानकर बहुत हर्ष हुआ कि वे स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी आरा की स्मृति में जैन-सिद्धान्त-भास्कर का देवकुमारांक प्रकाशित कर रहें हैं।

श्री बाबू देवकुमारजी आरा जैन समाज के प्रधान नेता थे और भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा के तो प्राण ही थे। आप जैन समाज की उन्नति, सेवा और परोपकार की भावनाओं से ओत-प्रोत थे। जिस जमाने में लोग अपने को जैन कहते हुए डरते थे उस जमाने में आपने धर्म और समाज की महान् सेवाएँ की हैं। शिक्षा के लिये भी आपने विद्यालय और पाठशालाएँ स्थापित कराई हैं। आप महासभा के कुंडलपुर और कानपुर अधिवेशन के सभापति भी बने थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जैन गजट के ६ - ७ वर्ष तक संपादक रहकर महान सेवा की है। आप कुरीतियों को हटाने, सुरीतियों का प्रचार करने, बालक-बालिकाओं को धार्मिक शिक्षा से ओत-प्रोत करने, स्त्री समाज में शिक्षा का प्रचार करने, लोगों में सदाचार की भावना जागृत करने और जैन समाज में उपदेशक तथा संपादक तैयार करने के लिये विद्यालयों में इनकी पढ़ाई की व्यवस्था का प्रचार कराने के लिये उद्यत रहते थे। इन शिक्षाओं की आज भी उतनी ही आवश्यकता है। स्त्री शिक्षा के तो आप विशेष हामी थे। आपने एक बार अपने वक्तव्य में लिखा था कि 'समाज की उन्नति तथा महत्व की कुंजी 'घर' है या यों कहिये कि समाज की उन्नति तथा महत्व का मूल स्त्रियां ही हैं।" इससे इन्हें शिक्षित करना यानी अपनी उन्नति करना है।"

आपमें धर्म की भावना पूर्णरूपेण विद्यमान थी। आपने सन् १९०६ में संपादकीय टिप्पणी में लिखा था कि हम ऐसे प्रमादी हैं कि जबतक हमारे शरीर ठीक हैं तबतक धर्म धारण नहीं करते हैं और मरने के समय धर्म ग्रहण करना चाहते हैं, परन्तु बन नहीं पड़ता क्योंकि अभ्यास तो अशुभ कर्मों के करने का है फिर अन्त समय क्या ध्यान टिके।

आप निर्भीकता से लोगों में धार्मिक भावना जागृत करने के लिये सदैव कुछ न कुछ लिखा ही करते थे। आप सन् १८९९ से महासभा के सभासद् रहे। आपने जैन गजट की गिरती हुई हालत को संभाला और महासभा को इसके बोझ से मुक्तकर दिया था। आपने जिनवाणी के उद्धार के वास्ते एक जैन-लाइब्रेरी खोलने का प्रस्ताव किया और २००० मुद्रा देने का वचन दिया था।

तीर्थरक्षा के कार्य में आप सदा अग्रसर रहते थे। श्री सम्मेद शिखर जी के संबंध में जब जब काम पड़ता, आप हमेशा हिस्सा लेते रहे। आप बड़े सीधे-सादे और शांति प्रिय स्वभाव के थे। सबसे बड़ी खूबी की बात आपमें यह थी आप अंग्रेजी में एफ. ए. और उर्दू के अच्छे जानकार थे, फिर भी गर्व आपको छू न पाया था।

दुःख है कि ऐसे महान नररत्न का असमय में ही वियोग हो गया। यदि कुछ समय और आप इस विनश्वर देह में रहते तो समाज की और धर्म की कितनी सेवा आपके द्वारा होती, इसका वर्णन किया नहीं जा सकता। लेकिन दैव दुर्निवार है। स्वर्गीय श्रद्धेय पूज्य अपने महान नेता के प्रति हम अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

परसादी लाल पाटनी

महामंत्री, अ० भा० दि० जैन महासभा, दिल्ली

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नारी जाति के उद्धारक--

श्रीमान् पूज्य बाबू देवकुमारजी नरेन्द्र के रूप में अवतरित देवेन्द्र थे। आपने पतनोन्मुख समाज का उत्थान किया था। सोयी हुई प्रेरणा को अपनी नेह-वाणी द्वारा जागृत किया था। जैन समाज के अज्ञान तिमिर को दूर करने का अहर्निश प्रयत्न किया। विद्यामन्दिरों की स्थापना कराई और अपने सदुपदेश तथा निबन्धों द्वारा जनमन को शुद्ध और संस्कृत करने में अपरिमित सहायता प्रदान की।

सदियों से दलित और अत्याचारों से पीड़ित नारी की करुणध्वनि को आपने सुना तथा अज्ञानता के बन्धन में जकड़ी नारी को स्वतन्त्रता का आस्वादन कराने के लिये आपकी आत्मा तड़फड़ाने लगी। आपने ही सर्व प्रथम जैन समाज में नारी शिक्षा की शंखध्वनि की तथा नारियों को भी पुरुष के समान शिक्षा पाने का अधिकार है। वे भी समाज निर्माण में अपना प्रमुख हाथ रखती हैं तथा उनकी उन्नति पर ही समाज की उन्नति अवलम्बित है, यह सबसे पहले आपने ही सिखलाया। शिक्षा के प्रति आपके मन में अगाध प्रेम था, आपने अपनी इसी हार्दिक आकांक्षा के अनुसार नारी शिक्षा का आन्दोलन उठाया और प्रबल तूफान के समान इसे भारत व्यापी रूप दिया। परिणाम स्वरूप जैन समाज में उच्च शिक्षा प्राप्त अनेक विदुषियाँ तैयार हुईं।

श्री बाबू देवकुमारजी नारी के उस आदर्श रूप के पक्षपाती थे, जो समाज में अपनी सहनशीलता, ज्ञान, चरित्र और त्याग के बल से सुख-शान्ति और समृद्धि की स्थापना कर सके। हाँ नारी जाति पर होनेवाले अत्याचारों की आप जी भर कर भर्त्सना करते थे, स्वार्थ और अहंकार की भावना, जो कि अशिक्षा के कारण प्रायः नारियों में पायी जाती है; आप उसका उन्मूलन करने के लिये बद्धकटि थे। आपका सिद्धान्त था कि समाज का निर्माण माता की गोद में होता है, अतएव नारी जाति को शिक्षित करना हमारा पहला कर्त्तव्य है। जब तक समाज में सुशिक्षा का प्रचार नहीं किया जायगा, माता और बहनों को साक्षर नहीं बनाया जायगा; समाज का कल्याण होने का नहीं। आदर्श समाज की प्रतिष्ठा शिक्षित महिलाएँ ही कर सकती हैं। नारियों की संकीर्णता, स्वार्थबुद्धि, अनुदारता और असहनशीलता ने ही आज समाज को तबाह कर दिया है।

नारी-शिक्षा प्रचार के लिये बाबू साहब ने सन् १९०५ में आरा में स्वयं कन्या पाठशाला स्थापित की तथा जैन समाज में सर्वत्र नारी-शिक्षा का आन्दोलन चलाया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जैन गजट के अनेक सम्पादकीय लेखों में नारी-शिक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया तथा नारियों में प्रविष्ट अन्धविश्वास, कुसंस्कार एवं मिथ्या आडम्बरों को दूर करने का शक्ति भर प्रयास किया। वस्तुतः भारती के उपासक युगान्तरकारी इस अमर दूत ने नारी जाति के उद्धार के लिये अथक श्रम किया और सफलता भी पायी! श्री जैन-बाला-विश्राम (जैन-महिला-विद्यापीठ) आरा, नारी-जाति के इतने बड़े हिमायती और हितैषी के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है। श्री बाबू देवकुमारजी की आत्मा स्वग में इस संस्था द्वारा की गयी नारी-सेवा को देखकर निश्चय प्रसन्न होती होगी।

संचालिकाएँ, शिक्षिकाएँ और समस्त छात्राएँ
श्री जैन-बाला-विश्राम (जैन-महिला-विद्यापीठ)
धमकुंज, आरा

अनुपम विभूति—

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी की पुण्य स्मृति में जैन-सिद्धान्त-भास्कर का विशेषाङ्क निकाल रहे हैं। यह कह देने में मुझे जरा भी संकोच नहीं होता कि इस समय जैन समाज में जो कुछ भव्य, मनोहर, आकर्षक और प्रभावक दीख पड़ता है उसका जिन दो-चार सत्पुरुषों को श्रेय है उनमें से बाबूजी भी एक थे। वे निःसन्देह जैन समाज की विभूति थे। यद्यपि उनके साक्षात् दर्शन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ पर उनकी यशोगाथाएँ मैंने जरूर सुनी हैं। मैंने सुना है कि एक बार कसाई खाने को जाती हुई पाँच सौ गायों के लिए उन्होंने अपने सेवकों को आदेश दिया था कि ये सब की सब खरीद ली जायं। उनकी परोपकारिता, दयार्द्रता और महत्ता को बतलाने के लिए यह एक ही उदाहरण पर्याप्त है।

—चैनसुखदास न्यायतीर्थ
प्रिंसिपल, जैन संस्कृत कालेज, जयपुर।

इस युग के महान्—

आरा में वीर सं० की २४ वीं २५ वीं शताब्दी में अनेक गणनीय पुरुष हुए हैं जिनके कारण जैन संस्कृति की ठोस सेवा हुई है। उनमें श्रीमान् स्व० बा० देवकुमारजी का प्रमुख स्थान है। उन्होंने श्री स्याद्वाद दि० जैन महाविद्यालय बनारस की नींव डाली, एतदर्थ अपनी विशाल धर्मशाला अर्पण की, जैन-सिद्धान्त-भवन आरा स्थापित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया, जैन-सिद्धान्त भास्कर का उदय भी उन्हीं की स्मृति में हुआ है। भा० दि० जैन महासभा के कुण्डलपुर अधिवेशन के अध्यक्ष पद से उन्होंने अपनी मूककार्य क्षमता का परिचय दिया। उनके पदचिन्हों के अनुसरण स्वरूप आज आरा में जैन महिलाओं की आदर्श शिक्षा संस्था 'श्री जैन-बालाविश्राम, प्रगति पथ पर चल रही है। श्रीमती विदुषी ब्र० चन्दाबाई जी आपके ही घर की आदर्श महिला हैं। जैन समाज के दुर्भाग्य से बाबूजी असमय में स्वर्गारोहण कर गये अन्यथा वे समाज हितके अनेक असाधारण कार्य करते। उनका व्यक्तित्व युगनिर्मापक मूकसेवक, ठोस कार्यकर्त्ता के रूपमें था।

अजितकुमार जैन, शास्त्री
दिल्ली।

नररत्न—

बाबू देवकुमारजी अपने समय के एक चमकते हुए उज्ज्वल नर रत्न थ। उन्होंने उस समय जैन साहित्य और जैन पुरातत्त्व को प्रकाश में लाने का अनोखा प्रयत्न किया, जबकि समाज इस ओर सर्वथा सुप्त था और उसके महत्व को जानता नहीं था। किन्तु बाबूजी एक दूरद्रष्टा युगपुरुष थे, जिन्होंने इस विषय में सर्व प्रथम उसके महत्व को जाना और अपने सम्पूर्ण प्रयत्नों से समाज का इस ओर ध्यान आकर्षित किया। जैन-सिद्धान्तों को प्रचारित करने के लिये अथक प्रयत्न किया। प्राचीन शास्त्रों के संग्रह का उनका प्रेस आज हमारे लिये पथ-प्रदर्शक का काम करता है। यदि वे असमय में ही न चले जाते तो उनसे धर्म व समाज की बड़ी सेवा होती फिर भी वे अपने पीछे जो जैन-सिद्धान्त-भवन के रूप में हमें एक अद्वितीय स्मारक दे गये हैं वह और उनके साथ उनका यश सहस्रों वर्षों तक स्थायी रहे, यही मेरी उनके प्रति श्रद्धांजलि है।

दरबारीलाल, न्यायाचार्य
मुख्याध्यापक, श्री समन्तभद्र विद्यालय, देहली

सहज देवत्व की प्रतिमूर्त्ति—

'वृत्तानि सन्तु सततं जनताहिताय' इस आदर्श भावना का सुन्दर समन्वय बाबू देवकुमारजी में था। वस्तुतः आप सहज देवत्व की प्रतिमूर्त्ति थे। सार्वजनीन कार्यों को जितनी दक्षता और तन्मयता के साथ आपने निष्पन्न किया था, उतनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दक्षता से उस युग में अन्य किसी ने नहीं। दिग्विमूढ़ जैन समाज को दिशा ज्ञान और मार्ग प्रदर्शन के लिये आपने अटूट श्रम किया। जैन-सिद्धान्त-भवन की स्थापना के समय आपसे अनेक बार मेरा विचार-विमर्श हुआ। आप एक ऐसी केन्द्रीय संस्था स्थापित करना चाहते थे, जो सभी दृष्टियों से जैन संस्कृति का प्रतिनिधित्व करे। साहित्य और कला के संचयन के साथ जिसे यथार्थतः आगम मन्दिर कहा जा सके। जिसमें जैनागम को दीवालों पर अंकित कराया गया हो। आपकी यह इच्छा समग्ररूप से पूर्ण नहीं हो सकी; फिर भी आपने जैन संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन के लिये बहुत कुछ किया है। आप आदर्श गृहस्थ थे, श्रावक के व्रतों का सम्यक्रूप से पालन करते थे तथा संयम का पालन करते हुए समाज कल्याण के लिये चिन्तित रहते थे। आपका प्रत्येक कार्य 'लोकहिताय' होता था। आप काम करने की धुनि में सदा रत रहते थे। नाम से दूर रहकर समाज की सच्ची सेवा आपने की है। आप लेखक, वक्ता और समाज निर्माता थे। मानवता का यह कीर्त्ति-स्तम्भ युग-युग तक समाज को प्रेरणा देता रहेगा। मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं।

जवाहरलाल शास्त्री,
जयपुर।

सरस्वती पुत्र—

श्री देवकुमारजी की धुँधली-स्मृति आज चल-चित्र की तरह मानस-पटल पर स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी है। 'जैन-भास्कर' के संचालकों ने भास्कर का देवकुमाराङ्क निकालकर प्रशंसनीय एवं मौलिक कार्य किया है।

जन-धारणा है कि लक्ष्मी और सरस्वती में मेल नहीं खाता। उनके भिन्न-भिन्न वाहन हैं। परन्तु श्री देवकुमारजी इस परंपरागत सिद्धान्त के अपवाद स्वरूप थे। आप धनी और विद्याव्यसनी दोनों थे। आपकी अटूट धार्मिकता, कट्टर सांप्रदायिकता नहीं, सत्य-अहिंसा एवं दया-दान के रूप में, मानव में ही नहीं प्राणिमात्र में भी व्याप्त थी। आपके जीवन काल में देश की हजारों संस्थाएँ आपके पैसों से जीवित थीं एवं अनेकों वृद्ध विधवाएँ हिन्दू-मुसलमान तथा परिगणित जाति की परवरिश पाती थीं।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम भाग और बीसवीं के आरंभ में, आरा का नव साहित्य निर्माण बाबू साहब की सहायता, प्रेरणा तथा उत्साह से हुआ है। आपका जैन-सिद्धान्त-भवन, विश्व विख्यात ओरियंटल लाइब्रेरी के रूप में है। आप आरा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नागरी-प्रचारिणी सभा के परम पृष्ठ-पोषक थे। आर्थिक सहायता के अतिरिक्त आप भाषणों और लेखों द्वारा भी सभा की प्रशंसा करते एवं धन-दान की प्रेरणा भी देते थे। हमारी हार्दिक कामना है कि देवकुमाराङ्क प्रकाशित करने के बाद 'देवकुमार स्मारक-ग्रन्थ' आवश्य प्रकाशित किया जाय। क्योंकि उस पीढ़ी के कुछ वृद्ध जन स्मृति-रत्न संजोये अभी जीवित हैं।

'भास्कर' के इस अङ्क में एक लेखक के रूप में सम्मिलित न होने का मुझे हार्दिक दुःख है। हम भी इस पुनीत अवसर पर आरा नागरी-प्रचारिणी-सभा की ओर से वीतरागी, गृह सन्यासी स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी को विनीत मधुर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं। आप यथार्थनामा देवकुमार थे।

रामप्रीत शर्म्मा

प्रधान मंत्रीः—नागरी-प्रचारिणी : सभा, आरा।

हिन्दी हितैषी—

पिछले कितने दिन बीत चुके। उस समय हिन्दी अपनी जवानी की अंगड़ाई लेने के लिए कसमस कर रही थी। आप इसके आकर्षण में बँध चुके थे! काफी मस्ती और दिलेरी के साथ एक दिन आप अपने कई सहकर्मियों के साथ इसके सौन्दर्य और सौष्ठव का आकर्षक प्रदर्शन करते हुए मैदान में उतर पड़े। आपने इसकी आरती उतारने के लिए अनेक मंदिरों का निर्माण किया। आज जैन-सिद्धान्त-भवन एक सजीव मूर्ति के रूप में हमारी आँखों के समक्ष वर्त्तमान है।

आपने हिन्दी-मंदिरों का सिर्फ निर्माण ही नहीं किया, बल्कि हिन्दी की साधना में निरंतर निरत रहे। हमें आपकी साधना पर गर्व है। हिन्दी-जगत आपकी अटूट एकांत साधना के समक्ष चिरकाल तक नतमस्तक रहेगा।

साधक का हृदय पवित्र होता है। आपमें वही पवित्रता वर्त्तमान थी। याचकों ने आपको सर्वदा दरिद्रनारायण के रूप में देखा, और परीक्षकों ने उदारता और सज्जनता की प्रतिमूर्त्ति के रूप में। जनता की भी आपकी ओर दृष्टि अवश्य गयी; लेकिन उसने आपको एक ठोस और कर्मठ पुरुष की उपाधि दी। आलोचकों और गंभीर पाठकों ने भी आपकी साधना की परीक्षा की। उनकी निगाहों में आप एक सफल कलाकार सिद्ध हुए।

सफल कलाकार आसुरी वृत्तियों से परे रहता है। संभवतः इसीलिए आप मानवता की एक सच्ची मूर्त्ति बन गये। आपकी दृष्टि में सभी प्राणी बराबर थे। आप का व्रत था—प्राणियों की सेवा करना। क्या लोगों ने आपको महात्मा की उपाधि देकर अनुचित किया? मैं कहता हूं—नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हे स्वर्गीय महान आत्मा ! हे श्री देवकुमार के में पृथ्वी पर विख्यात होने वाले मानव ! संसार आप को चाहे जो कहे; लेकिन मैं आपको मानवता की चरम सीमा पर दृढ़ता के साथ स्थिर रहने वाला एक कलाकार मानता हूं। आपके प्रति मेरे अन्तस् में जो अटूट श्रद्धा और स्नेह का रस-स्रोत प्रवाहित हो रहा है, उसे अपनी आँखों की अंजुलि में समेट कर आपके चरणों पर चढ़ाता हूं।

बनारसी प्रसाद 'भोजपुरी'

प्रधान-मंत्री, शाहाबाद हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

स्मरणीय—

स्व० देवकुमारजी के मैंने एक ही बार दर्शन किये थे, जब वे महासभा के कुंडलपुर (दमोह) अधिवेशन के सभापति हुए थे और उसके कुछ ही वर्ष बाद उनका स्वर्गवास हो गया था। साक्षात् परिचय और वार्तालाप का कभी मौका नहीं आया। परन्तु उनके दान से जैन-सिद्धान्त-भवन की स्थपना होने के कारण उनकी स्मृति मेरे मन में सदा जागृत रही है और भवन के प्रति ममता भी।

नाथूराम प्रेमी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

कर्मठ त्यागी—

श्री बाबू देवकुमारजी उन महात्माओं में से थे, जो अपनी सेवा और त्याग द्वारा देश एवं समाज को उन्नत बनाते हैं। उनके कर्मठ त्यागी जीवन से हमें स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती है। अतः उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर मैं अपने को गौरवान्वित मानता हूँ।

बुद्धनराय वर्मा एम. एल. सी.

अध्यक्ष, शाहाबाद पुस्तकालय संघ

युवकों के पथ प्रदर्शक—

श्री बाबू देवकुमारजी से हम युवकों को अनेकानेक प्रेरणाएँ मिलती हैं। वस्तुतः वे हमारे एक पथ प्रदर्शक सच्चे नेता थे। उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना प्रत्येक युवक का परम कर्त्तव्य है।

माधवराम शास्त्री, न्यायतीर्थ

आरा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महान्—

श्री बाबू देवकुमारजी की सेवाओं से अधिकांश तथा जैन समाज परिचित है। आप जैन समाज के प्रसिद्ध धर्मनिष्ठ परोपकारी सज्जन थे।

आपके हृदय में जैनधर्म के प्रति विशेष अनुराग था और उसके प्रचार की उत्कट भावना आपकी नस नस में भरी हुई थी। आपने अपने ३१ वर्ष के अल्प जीवन काल में जो सेवा कार्य किये हैं, वे समाज से छिपे हुए नहीं हैं।

परमानन्द जैन शास्त्री, सरसावा

कृतज्ञता—

अजनि देवकुमार इति क्षितौ प्रतिदिशं प्रथितः प्रथितान्वयः।
हसति यस्य पुरी मगधस्थिता सुरपुरीमपि भव्यजनाश्रया ॥१॥
पितामहस्तस्य जगत्प्रसिद्धो बभूव धन्यः प्रभुदाससंज्ञः।
गुणानिदानीमपि यस्य लोकः सगौरवं गायति नित्यमेव ॥२॥
यस्यात्मजौ राजसमानतेजोविराजमानौ विदिताभिधानौ।
निजान्वयाम्भोनिधिपूर्णचन्द्रौ सद्धर्मकर्मोत्सववीततन्द्रौ ॥३॥
निर्मलकुमारनामा प्रथमोऽप्रथमश्च सद्गुणागारः।
चक्रेश्वरः कुमारः परमोदारावुभावेव ॥४॥
ताभ्यामुभाभ्यामतिसज्जनाभ्यां हर्म्यप्रदानाद्गुणसंश्रयाभ्याम्।
काशीस्थविद्यालयमुख्यनामस्याद्वाद एषोऽद्यकृतः कृतार्थः ॥५॥
यद्भ्रातृपत्नी विदुषीह चन्दाबाई प्रसिद्धा महिलासमाजे।
तद्यत्नसंस्थापितजैनबालाविश्रामसंस्था नितरां विभाति ॥६॥
आरापुरीमध्यविराजमानं यज्जैनसिद्धान्तगृहं विशालम्।
तन्मूलहेतुर्नररत्नदेवकुमार एवेति नवेत्तिकोऽत्र ॥७॥
विद्यालयस्यास्य च सूत्रपाते यो मुख्यहेतुः कृतहर्म्यदानः
अर्थप्रदानं समयानुरूपं व्यधात्सदा मासिक-दानरूपम् ॥८॥
तत्साचिव्यकृतोत्कर्षः स्याद्वादोऽयं कृतज्ञताम्।
श्रद्धा श्रद्धाञ्जलि द्वारा व्यनक्त्युपकृतिं स्मरन् ॥९॥

काशीस्थ श्रीस्याद्वादमहाविद्यालयतः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री बाबू देवकुमार जी का वसीयतनामा

[अपनी मृत्यु के पूर्व ४ जून सन १९०८ बाबू देवकुमार जी ने एक वसीयतनामा २९०० रुपये के स्टाम्प पर लिखा है। जो उर्दू भाषा में है, यहाँ पर उसके कुछ उपयोगी अंश अनूदित कर दिये जाते हैं। इससे बाबू साहब के उदार हृदय की विशाल झांकी तथा उनकी आन्तरिक अभिलाषाओं का साक्षात्कार पाठक कर सकेंगे]

मैं बाबू देवकुमार सुपुत्र स्वर्गीय बाबू चन्द्रकुमार मोहल्ला महाजन टोली नं० १ आरा नगर निवासी हूँ। मेरा व्यवसाय जमीन्दारी और जाति का अग्रवाल जैन हूँ। चूँकि मैं सदा अस्वस्थ रहा करता हूँ और इस समय अत्यन्त रुग्ण हूँ तथा जीवन का कुछ भी ठिकाना नहीं अतः मेरी यह इच्छा है कि मैं ऐसा प्रबन्ध करूँ, जो मेरी मृत्यु के पश्चात् भी सदा के लिये स्थिर रहे और मेरा तथा मेरे वंश का नाम अमर रहे, मेरा परलोक भी बने; इसलिये मैं स्वेच्छा और निजी प्रेरणा से विचार विनिमय पूर्वक, बिना किसी दबाव और अन्य की प्रेरणा के अपनी पूर्ण चैतन्यता में नीचे लिखे अनुसार प्रबन्ध करता हूँ; जो मेरी मृत्यु के बाद काम में लाया जाय।

मिस्टर डिऊडरउल वो शी० शी० राबिन्सन से २७ अगस्त सन् १९०५ ई० को खरीदी हुई आरा नगर की १७ धूर जमीन, जिसकी सीमा निम्न प्रकार है और जो मेरे अस्तबल के काम में लाई जाती है; मकान सहित इस अस्तबल को श्री चन्द्रप्रभु जी के मन्दिर को अपनी इच्छा पूर्वक प्रदान करता हूँ।

सीमा—पूर्व में बाग बलदेव दास, पच्छिम नाली और उसके बाद सड़क सरकारी, उत्तर बरामदा मन्दिर; दक्खिन रामगोबिन्द कुर्मी।

श्री महावीरचन्द सुपुत्र स्वर्गीय श्रीकृष्णचन्द्र आरा नगर निवासी, जो कि मेरे फुफेरे भाई हैं और जिनके प्रति मेरा कुछ कर्त्तव्य है, मैं आरा नगर में महाजन टोली का एक किता मकान, जिसकी सीमा निम्न है; इन्हें प्रदान करता हूँ और इसकी मरम्मत के लिये १५००) रुपये भी देता हूँ। यह मकान उनके वंशज का होगा।

सीमा—पूर्व में गली आने-जाने की, पच्छिम मकान छेदी मियां, उत्तर में गली और दक्खिन में गली लक्ष्मी प्रसाद अग्रवाल के मकान में जाने की।

मैंने श्री पार्श्वनाथ जी का एक मन्दिर मु० गढ़वा, परगना करारी, थाना पच्छिमसरीरा, तहसील मंझनपुर, जिला इलाहाबाद में निर्माण कराया था, जिसमें कुछ काम अभी बाकी है और पार्श्वनाथ जी की प्रतिष्ठा भी अभी तक नहीं हुई है। यदि इलाहाबाद की दि० जैन पंचायत इस मन्दिर के प्रबन्ध करने का भार अपने ऊपर ले ले और प्रतिष्ठा का प्रबन्ध करले तो मेरे उत्तराधिकारियों और प्रबन्धकों का यह कर्त्तव्य होगा कि वे ५०००) रुपये पंचों को दे दें और यदि पंच तैयार न हों तो हमारे उत्तराधिकारी और प्रबन्धक इन्हीं रुपयों से प्रतिष्ठा और मन्दिर का प्रबन्ध करें।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मैंने अपना परलोक सुधारने के लिये कुछ दान देने की प्रतिज्ञा की है, जिसकी शर्तें निम्न प्रकार हैं। परन्तु अभी तक यह चन्दा दिया नहीं गया है, अतः मेरे उत्तराधिकारियों, प्रबन्धकों का कर्त्तव्य है कि वे उन सब दानों की रकमों को अगली सूची के अनुसार देने से इंकार न करें जिससे मेरी सदिच्छा और ध्येय पूरा हो।

दि० जैन महासभा के कुंडलपुर के प्रस्ताव के अनुसार जैन गजट को चिरस्थायी बनाने और उसकी उन्नति के लिये एक जैन प्रेस कम्पनी स्थापित की गयी है, जिसके मैंने ५० हिस्से (शेयर), जो कि प्रत्येक १०) रुपये का है, जिनकी कुल रकम ५००) रुपये हैं, खरीदे हैं। परन्तु अभी तक उनका पूरा रुपया नहीं दिया गया है, अतः मेरे प्रबन्धकों और उत्तराधिकारियों का कर्तव्य होगा कि वे पूरा रुपया देकर सब हिस्से (शेयर) प्राप्त कर लें। यह रुपया जनरल स्टेट की आमदनी से दिया जाय। जब इन सभी शेयरों का रुपया चुक जाय तो इन शेयरों का सारा मुनाफा जैन गजट को मिले और इन शेयरों पर जैन गजट का ही स्वत्व रहे।

महावीरचंद सुपुत्र स्वर्गीय श्रीकृष्णचन्द, जो मेरे फुफेरे भाई हैं, जिनको मैंने मकान दिया है और जिनके भरण-पोषण के लिये मासिक सहायता भी दी जा रही है; उनके ऊपर आज तक हिसाब करने से हमारा ३३३६।।≶)।।। निकलता है। मैं स्वेच्छा से उनकी अवस्था पर सहानुभूति प्रकट करते हुए इन रुपयों को छोड़ता हूँ और हिसाब साफ करता हूँ। मेरे प्रबन्धकों और उत्तराधिकारियों को उनसे तकाजा करने का अधिकार नहीं है।

भादों २१ फसली सन् १३११ में २६ बीघा खेत जो गाँव डीहपुर, परगना भोजपुर जिला शाहाबाद में है, २० बीघा ५ कट्ठा रैयती जमीन जो २५ जुलाई १९०५ में और ६ बीघा जमीन तारीख १६ फरवरी १९०७ में खरीदी गई है; उसे तथा बंगाल बैंक बाँकीपुर के सैविंग बैंक खाते में ७५०) रुपये, जो हमारे मुनीम व खजाँची गोपीनाथ के नाम से जमा हैं; जैन जाति के अनाथ और विधवाओं के भरणपोषण की सहायता के लिये दान करता हूँ। मेरा यह उद्देश्य रहा है कि जैन जाति के अनाथ और विधवाओं का समुचित संरक्षण किया जाय, इसलिये मैं अपनी उपरोक्त जायदाद को उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये जैन अनाथालय हिसार (पंजाब) को दान करता हूँ। यह अनाथालय इस जायदाद से हमारे उद्देश्य की पूर्त्ति करेगा।

दीन-मुहम्मद खाँ सुपुत्र चिराग अली खाँ, गाँव रानीसागर, परगना बिहीया, जिला शाहाबाद जो हमारे पिता के समय से मुख्तार और कारिन्दा रहे आये हैं, यह हमारे शुभचिन्तक और आज्ञाकारी हैं। मैं इनसे सदा प्रसन्न रहा हूँ। इनको इस समय २५) माहवारी वेतन दिया जाता है, हमारी इच्छा है कि जब तक यह स्टेट का काम करने लायक रहें, २५) माहवारी के हिसाब से वेतन दिया जाय। यदि ये किसी कारण काम करने लायक न रहें तो स्टेट से २०) रुपये माहवारी पेनसन दी जाय।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दान-सूची

१	मन्दिर मरम्मत श्री वासुपूज्य स्वामी मन्दारगिर, जि० भागलपुर	५००)
२	जैन सरस्वती भवन के निमाणार्थ तथा नये-पुराने जैन शास्त्रों के संकलन और प्रचार के लिये	२०००)
३	श्री सम्मेद शिखर जी तीर्थरक्षा कमिटी के लिये	१५००)
४	मूडबिद्री के मन्दिर के लिये १०८ कलशा बनवाने को	१७५)
		४१७५)

जमीन नं० १ फिहरिस्त A

दान दी गयी जायदाद अर्थात् मौ० प्रहाप, परगना नोनउर, जिला शाहाबाद जिसका तौजी न० ३२५६ है; का आमद खर्च का विवरण निम्न प्रकार है—

जमाबन्दी रकम		७५६०॥-)।
सरकार में जमा की जानेवाली रकम		२६६२॥।)।
मालगुजारी सरकारी	२२७६॥,	
वेतन कर्मचारी	१५०)	
वेतन पटवारी और मुंशी	२३६।)।	
	२६६२॥।)।	

अवशेष मुनाफा मौजा प्रहाप का, जिसका उल्लेख वसीयतनामा की ३ री धारा में किया गया गया है, निम्न प्रकार खर्च किया जायगा।

१	प्रबन्ध मन्दिर खास आरा	५००)
२	प्रबन्ध मन्दिर भदैनी, बनारस	३००)
३	प्रबन्ध मन्दिर चन्द्रावती	२००)
४	सरस्वती भवन	१५००)
५	जैन पाठशाला तथा कन्या पाठशाला आरा	५००)
६	छात्र वृत्तियाँ, पाठशाला काशी तथा अन्यान्य पाठशालाओं के छात्रों को धार्मिक शिक्षा की उन्नति के लिये	५००)
७	ऐसे जैनधर्म प्रचारक, जो अपना समय जैनधर्म के प्रचार में लगावें और उनका कोई वसीला न हो तो उनकी स्त्री को दिया जाय	१००)
८	जैन पुरातत्त्व संग्रह एवं शिलालेखादि संरक्षणार्थ	२००)
९	औषधालय श्री सम्मेद शिखर	८००)
१०	मन्दिर गढ़वा (इलाहाबाद)	२००)

नोट:—यदि बचत में कुछ रुपये रह जायँ, तो शास्त्र खरीदने और लंगड़े-लूले आदि की सहायता में खर्च किये जायँ।

I have executed this will.
Sd. DEVA KUMAR.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Sri Babu Deva Kumar Commemoration Number

THE JAINA ANTIQUARY

VOL. XVII JUNE 1951 No. I.

Edited by

Prof. A. N. Upadhya, M. A., D. Litt.
Prof. G. Khushal Jain, M. A., Sahityacharya.
Sri, Kamata Prasad Jain, M. R. A. S., D. L.
Pt. K. Bhujbali Shastri, Vidyabhushan.
Pt. Nemi Chandra Shastri, Jyotishacharya.

Published at :

THE CENTRAL JAINA ORIENTAL LIBRARY,
ARRAH, BIHAR, INDIA.

Annual Subscription :

Inland 3. Foreign 4s. 8d. Single Copy Re 1/8.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

CONTENTS.

1. B' Deo Kumarji Jain
   —Sri Birendra Kumar 1

2. A Noble Server of the Noble Cause
   —Sri Jyoti Prasad Jain 8

3. The Central Jain Oriental Library
   —Sri C. S. K. Jain, M. A. 11

4. Deva-Vāni
   —Prof. Dinendra Chand Jain, M. Com. ... 17

5. Late B. Devakumar Jain and his
   Jain-Siddhanta-Bhavana Publications
   —Prof. R. D. Mishra 26

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Om

The JAINA ANTIQUARY

" श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥ "
[अकलंकदेव]

Vol. XVII
No. I

ARRAH (INDIA)

June
1951.

BABU DEO KUMARJI JAIN

By

Sri, Birendra Kumar, Editor "Nagrik", Arrah,

The lives of great men of culture, learning and spiritual attainments are best studied as a whole but generally the closing periods of such lives are the most sublime, the quintessence of the whole life as they are.

This we find fully illustrated in the life of Danvir Babu Deo Kumar Jain, who has left a landmark in the cultural and educational advancements of the Jain community throughout India.

Before his death he remained confined to bed for three and half months. During this period not a day passed when he did not perform his strict religious duties regularly. Though the disease was a fatal one, he was quite unmindful of the consequences. There was no body to look after his family consisting of his wife and two young sons just within their teens but this fact did not produce any disturbing effect on his mind, resigned as he had everything of his in the hands of Providence. The only idea which occupied his mind was to die peacefully with the name of the Supreme Being on his lips. So in order to keep a spiritual atmosphere around him,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

he had requisitioned the services of a high class Jain Sadhu named Varni Nemisagarji, who remained with him all the twenty four hours reciting holy books. His disease grew worse but his mind drew nearer to extra-mundane things. He was taken to Calcutta for operation. No doubt the doctors were not very hopeful of recovery but unlike an ordinary wordly man he struggled not for life but for death, which seemed to be more alluring to him. Six hours before his death he took 'Sallekhana'[1] and resolved not to eat or drink anything even if his life be saved anyhow. Then sending off everybody from his presence he absorbed himself in hearing scriptures from the aforesaid Nemiji and passed away in perfect peace and tranquility.

This incident portrays a strength of mind and a spirit of renunciation seldom found in a man leading family life. Let us now look into his career to find the sources of such extraordinary and sterling qualities of head and heart.

Babu Deo Kumarji was born in an ancient, high and cultured Zamindar family of Arrah on the 7th March 1877. His grandfather Babu Prabhu Dasji who was a great scholar of Sanskrit and a man of charitable and religious disposition, got constructed many temples in different parts of India and a big Dharamshala on the bank of the Ganges at Benares.

The father of Babu Deo Kumarji, Babu Chandrakumarji was also a pious man and had made a Jain temple at Kousambi. But unfortunately he died at an early age. At that time Babu Deo Kumarji was only ten years old. He inherited a big estate and along with it also the charitable disposition and religious zeal of his father and grandfather. Being a minor his estate went under the control of 'Court of Wards'. He was married at the age of seventeen. When he passed the I. A. examination, the District Magistrate pressed him to drop his studies and look after his zamindari. He was very much desirous of graduating but circumstances compelled him to take the burden of his estate and family on his young shoulders. After a few years he was appointed an Honorary Magistrate and he

1. This is one of the most difficult Jain vows according to which a person suffering from some serious illness, resolves to give up for ever the enjoyment of one or more things in case his life is saved.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

stuck to that post for many years. But in the midst of all these tiring occupations he always found time to study religious books and hold religious discourses with scholars.

In the year 1900 his younger brother Babu Dharam Kumarji, died of plague at Parasnath Hills where he was on pilgrimage. He was married only a few months before in Mathura. He was a very brilliant student reading in B. A. Babu Deokumarji was very much shocked but he bore it peacefully and at once felt his duty towards his brother's wife Pandita Chanda Baiji Jain who was only fourteen years old at that time. He appointed big scholars of Jainism so that her tender mind might become religious. He also appointed learned teachers to teach her English, Hindi and other subjects. Besides this, he himself taught her from time to time. As a result of all these she is now a living monument to Babu Deokumarji's spirit of renunciation and zeal for service to Society. It is she who founded the Jaina Bala Vishram at Arrah in 1921 and has been conducting it with great success. She also edits the Jain Mahiladarsh and the *Akhil Bhartiya Jain Mahila Parishad.*

Babu Deokumarji had a very fine grasp of the Jain Philosophy and he realised the the potentialities of the tolerant preachings of "Syadbad"[1] philosophy, so much needed in the Indian Society, torn with religious strife and dissensions. So on the 12th of June 1905 he established a "Syadbad Pathshala" in Benares which in a few years grew to "Mahavidyalaya" and made a gift of the "Dharamashala" made by his grandfather for housing it.

Now he rivetted his attention towards South India which is a veritable arsenal of religious faiths. He knew there was a mine of Jain Literature lying in oblivion unexploited by scholars, So in the year 1907 he started for a pilgimage in the South India with his whole family. He also took with him chosen lecturers and musicians. He visited almost each and every place of pilgrimage and was filled with a sense of pride at the immensity of Jain Literature and things of Jain art and culture like the 56 feet high and 1200

1. This is an important branch of Jain Philosophy, which holds that every thing can be viewed in more than one aspect, So what is real in one sense can be unreal in another.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

years old stone image of 'Sri Bahubali Swami' but he was much grieved, at the same time, to see that there was none to look after or appreciate these things which were on the verge of ruin by the ravages of time. He then and there took a vow of leading a 'Brahmachari' life till he collected all the available literature of Jainism and made provision for their safe upkeep. Accordingly where-ever he went, he spurred people to open libraries to collect and preserve these things. In many places he himself laid the foundation stone of such libraries.

Thus making an extensive tour of the Bombay Presidency, Sravanbelgola, Mysore, Bengalore, Mangalore and other places, his party reached Mudbidri. Here he met with a number of archaeological finds and Jain images of exquisite beauty made of diamonds, rubies, emeralds and other valuable stones. But to his utter surprise and pain he found the people indifferent to their enviable surroundings and possessions due to the their ignorance. So he called a meeting of the Jain community there and through lectures and persuasions brought home to them the need of religious and educational institutions. The response was prompt and sufficient money was collected to start the institution at once. Now with the same zeal and fervour he proceeded to Belgaun and several other places exhorting people to follow the same line of action as suggested by him in Mudbidri and the response was equally good every where. Now returning from his South India pilgrimage and being in possession of several resuscitated ancient Jain Literatures, he felt the necessity of establishing a centre at his own headquarters at Arrah where he could preserve those valuable materials and make them available to research scholars.

With this end in view he established "The Central Jain Oriental Library" which is now housed in a beautiful up-to-date building, built at the cost of several thousands of rupees. The library has now become a growing institution having thousands of high class books on different topics concerning all the religions and almost all the schools of philosophy of the world, four thousand and five hundred manuscripts on 'Bhojaptra' a good many collection of rare coins, stamps and antique sacred paintings. Under the auspices of this library is also published 'The Jain Sidhanta Bhasker' a high class

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

periodical which is subscribed by most of the intellectual aristocracy of the country and the centres of research works. It is these characteristics of this library which won the approbation of Mahatma Gandhi, Pandit Madan Mohan Malviya and other great personalities of India when they happened to visit this part of the country. It has also attracted scholars from Germany and America who specially came to this place in connection with research works.

Again Babu Deokumarji, being an advocate of female education, established, at the same time, a Primary Girls' School at Arrah. The effect produced by this institution is evident from the fact that today we find not a single illiterate woman in the Jain community at Arrah.

He also worked for the All India Digamber Jain Mahasabha which aims at roping in all the scattered elements of the Jain community and organising them into a homogenous body. He was to a large extent responsible for the popularity of the Mahasabha. In the Kundalpur session of the Mahasabha held in April 1907, he was elected President. His presidential speech was vibrant with the same religious spirit as was evinced during his south India pilgrimage and in his editorials of the 'Jain Gazette'. He chalked out in his speech several programmes for the emancipation of Jain community which still serve as a beacon light to social and religious reformers of the community. The speech on the whole was bristling with gems of noble thoughts—provoking ideas, and I may crave the indulgence of the readers if I quote a few passages from it here :—

The reason why we fail today in all our undertakings, that all our activities are divorced from Religion, and accordingly all our movements aimed at the betterment of society is bound to fail. Hopps said "You can not, if you wished it, suddenly reverse the policy of generations and abolish the machinery that has set the pace and determined the products of hundred years." Mr. Humphry Wood said "The world cannot get on without morals. They are the binding forces for solidarity and continuity. I take my stand on morals, and if you give me morals, you must give me the only force that can guarantee them—dogma,—and ritual,—and superstition,—and all the foolish ineffable things that bind mankind together, and send them

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

to face the music in this world and the next. Some how or other you must get conduct out of the masses or society goes to pieces. But you can only do so through religion i. e. the organization, which can ever get conduct out of the ignorant in the way they understand."

It is well known that reform of the individual is easy but the reform of the nation is a difficult task, one may be responsible for the act of the one but for the act of the whole, the whole must be responsible, one cannot be responsible for all, for this, unity is essential. Community work is for the whole Community, Social work is for the whole Society. Neither work for any one nor depend on any one. "A nation has to learn self govt, just as it has to learn every thing else, and nothing helps so much as to put the nation, in charge of its own destiny.

"Our community has been the blind imitators of others, unmindful of the situation of our own country, the time, the formation, organisation and policy of the society. This has robbed us of our faculty of independent thought and action. We are here for bringing about reformation in the society, and society being comprised of individuals we should spare no pains in working for the welfare of the widows and the orphans; we should provide for the education of children, character-formation of youngmen, right use of the money of the aged and big persons and never allow them to go astray of the right path, so that they may attain salvation in the end."

He further added "The world cannot progress without 'Dharma' and for its establishment we have got to banish age-worn customs, superstition and fears of all description. This alone will place the society on a firm basis and make it immortal."

In the end he diagnoses the real disease of the body politic when he says "The most painful factor in our society is that we are not tolerant towards people differing from us in religion, thought and action", and exhorted the audience thus "We should appreciate and respect any one, belonging to any community who has worked for the betterment of his community in however small a degree it may be."

Coming back from Kundalpur conference while he was planning fresh fields of activities and services, Providence was planning

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

otherwise. He fell seriously ill soon after and breathed his last in August 1908, in the extraordinary circumstances already enumerated.

We have already seen how peacefully and manfully he embraced death. At that time he had no anxiety about any thing except the preservation of the ancient scriptures and the uplift of the community. So for this purpose he created a trust of a property worth more than a lac of rupees fetching an annual income of about ten thousand rupees. This Trust now maintains the Central Jain Oriental Library, Arrah; the Girls School Arrah, finances the Syadbad Mahavidayala Benares, charitable dispensaries at Shri Parsvanath and at Arrah and several Jain temples at different places. Besides these it renders financial help to poor and deserving students irrespective of caste and creed. He further made an appeal to the members of his community and its leaders in the following words :—

'My last request to my Jain brothers and the leaders is that they should immediately strive for the preservation of ancient 'Shastras' 'Puranas'. It is these things that will proclaim the loftiness of Jain religion and propogate its light throughout the world, making it immortal. This was my aspiration since long and I had taken a vow of leading a life of celebacy till I fulfil this work. I am deeply pained not to have the good fortune of accomplishing this holy task. Now it is for you to take a vow for the completion of this holiest of holy tasks. The responsibility is now entirely yours."

This last message of his, spurred the entire community into action and his two illustrious sons, Babu Nirmal Kumar Jain Ex. Member Council of State and Babu Chakreshwar Kumar Jain, B. Sc., B. L., Ex. M. L. A., even in the midst of their manifold preoccupations leave no stone unturned to see that every word of the message and the purposes mentioned in the trust ars completely fulfilled.

In the end when we have surveyed the volume of works done by Babu Deokumar Ji and see that he accomplished all these at the early age of thirty, we are simply wonder-struck and are reminded of the very apt saying that "Man lives not in years but in deeds."

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

A NOBLE SERVER OF THE NOBLE CAUSE

By

Sri. Jyoti Prasad Jain M.A , LL. B , Meerut.

History is race memory. If a nation knows nothing of its history, it has lost its memory and so its identity. It now becomes a new nation with all to learn anew. And it cannot have a true feeling of nationhood. It is its history which gives the key to the spirit of a nation. The present has grown out of the past which cannot be understood without a knowledge of history.

And as Thomas Carlyle has oftly observed in 'Heroes and Hero-worship', "universal history, the history of what man has accomplished in this world, is at bottom the history of the greatmen who worked that." In every age, men who rose head and shoulders above their fellows, by strong character, dominant personality intellectual genius—have been the modellers, patterners, creators of whatsoever the general mass of men contrived to do or attain. It is why Ralph Weldo Emerson said, "All history resolves itself very easily into the biography of a few stout and earnest persons." Moreover, by reading about great persons, our mind becomes peopled with many noble and great figures, and we come to feel a deeper interest in humanity as a whole.

And what is true about humanity as a whole or about a race, nation or country, is equally true about a community or cultural unit, however small. In fact, the history of a nation is nothing but a summing up of the histories of the various communities, societies and cultural units it consists of. Particularly, in the case of our own country, we cannot think of a history of India in any particular period without taking into account the cultural contributions and the efforts in advancing progress of the numerous and various communities that people this land.

Like the Hindus, Muslims, Sikhs, Parsees, Christians, Budhists and others the Jains have all along the historical times formed themselves into a definite and distinct community as well as a cultural group, while unlike most of them Jainism is a purely indigenous

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

and highly ancient system with its votaries distributed all over the land and amongst all classes. In every age, they have had contributed their own quota to the cultural advancement of the country and to the building up of its history.

After the great Indian struggle for Independence in 1857, there was a general awakening in India. A new era had dawned bringing in its train movements for social and religious reforms, political conciousness, civic sense, education and literacy, the need of popularising studies of ancient literature, preservation, restoration and publication of old manuscripts and monuments, and encouraging deeper studies, investigation and research work in the various branches of Indian learning and culture. Fortunately, the Jains too did not lag behind their fellow countrymen in this revolutionary epoch of reconstructing the nation's destiny, and in keeping pace with the march of time. The credit really goes to about a dozen or so towering personalities who in the first half of the last hundred years made the present Jaina community what it is. No doubt, they were also the product of their own age, and a horde of lesser men too made their contributions which were by no means small or insignificant. Yet if we survey the history of the Jaina community in the past hundred years, it will easily be found to resolve itself into the biographies of those few eminent servers of the cause of progress.

And the late Babu Deokumar of Arrah occupies a very prominent place in that galaxy of the makers of present Jaina community. He came of a highly respectable Zamindar and Rais family of Arrah (Bihar). His grandfather was the wellknown Pt. Prabhudas and his father's name was B. Chandra Kumar. B. Deokumar was born in 1876 and of an early age inherited his patrimony. But unfortunately he could not enjoy a long life and met a premature death when he was barely thirty one years of age, in 1907. Though he died so young, the things that he achieved in so short a span of life are marvellous and bear testimony to his ardeous zeal, selfless devotion and high intellectual powers. He was ordinarily well educated and was quite at home in English, Persian, Sanskrit, Urdu and Hindi. He was such an ardent lover of education that he wanted to set an example through his beloved younger brother Dharma Kumar but

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

this boy also died very young breaking the heart of his elder brother and leaving behind a widow, Pandita Chandabai, in whom the community found its greatest lady leader of modern times. B. Deokumar was a true patron of art and learning. He patronized various organization instituted for the propagation of these things, was an active patron of the Arrah Nagri Pracharni Sabha, gave scholarships and other subsidies to deserving but poor students of whatever caste or creed. He founded the Central Jaina Oriental Library at Arrah which has one of the best collections of ancient manuscripts and research literature, atleast in the Jaina community, was one of the founders and first Secretary of the Syadvada Maha-vidyalaya, Kasi and donated a suitable building for the same. He was also a founder and one of the early leaders of the Digambra Jain Mahasabha and for some time edited its weekly organ the Hindi Jaina Gazette. He paid visits to many Jaina places of pilgrimage and munificently spent money for the restoration and preservation of ancient monuments in those places. It was again due to his zealous efforts that the Dhaval, Jayadhaval commentries of Digambara Jaina canonical works, which lay buried in the Jaina Matha of Sravan Belagola (Mysore state), saw the light of the day. The preservation and restoration of the old manuscripts, inscriptions and monuments was so dear a thing to his heart that while in the full bloom of his youth, he took the difficult vow of perfect celebacy till this work would be completed. When death came, so unexpected and early, the first and the last thing he exhorted his friends to do after him was the same above mentioned work that had ever been his life mission.

A great and noble soul which lived and died with thoughts for the good of others, for the uplift of society and for the propagation of religion and culture, Babu Deokumar made himself immortal. Numerous institutions and organizations, individual scholars, all both Jaina and non-Jaina freely received his active patronage and generous help. And there was hardly any Jaina movement of his time in which he was not an active participant. He is trully one of the real makers of Jaina history in modern times. And we can best pay our homage to his sacred memory by pursuing his path and by helping to serve the cause he so devotedly served all his life

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

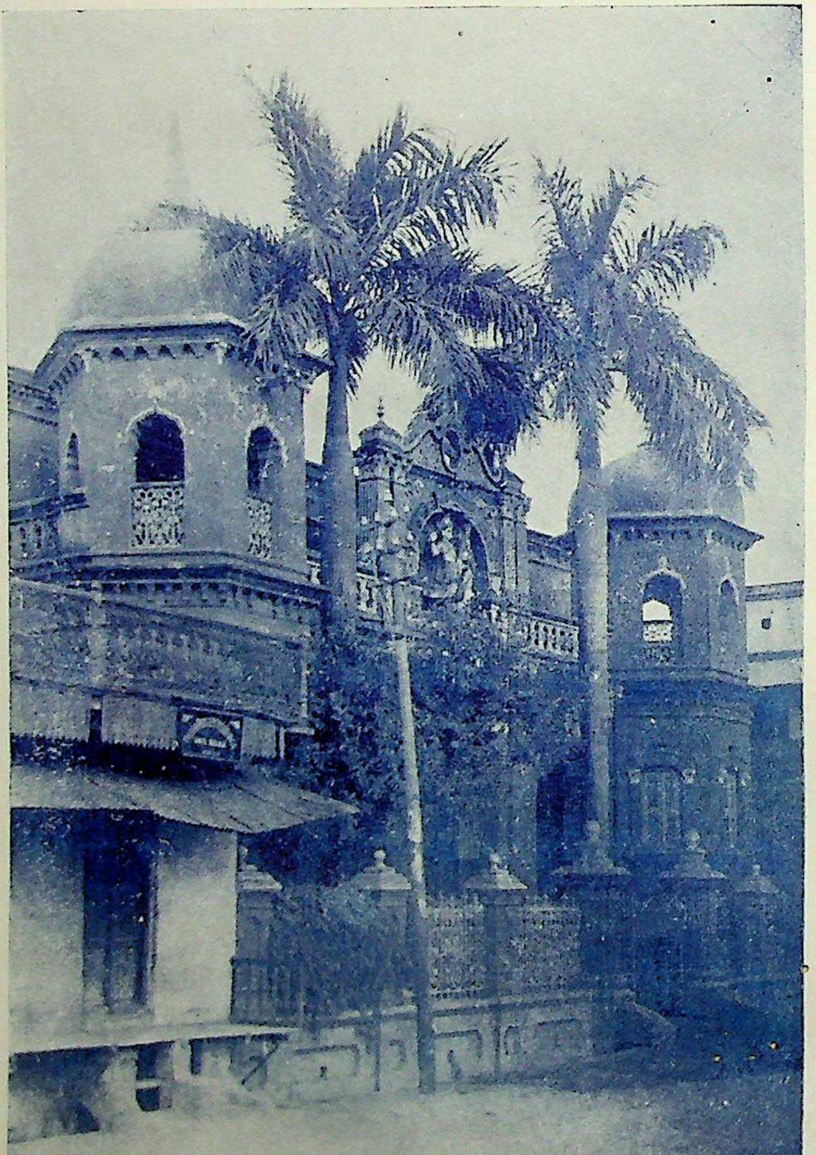

श्री बाबू देवकुमार जी द्वारा संस्थापित श्री जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
(The Central Jain Oriental Library, ARRAH.)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

THE CENTRAL JAIN ORIENTAL LIBRARY.

By

Sri C. S. K. Jain, M. A.

Late Shree Rabindra Nath Tagore, the famous literary personality of international reverence, has rightly remarked that 'literature intimately connects man with man, the far with the near and the past with the present.' Had it remained merely the best thought, expressed in the best and attractive manner, having a momentous effect, it would not have received a value, higher than a table-talk, only to be forgotten the next moment It is this special characteristic which compelled mankind to get such expressions preserved. Really civilazation starts from the day, man has learnt the way to preserve his thoughts for future observance, meditation, guidance and proper use. Written records, mostly books, have proved themselves to be the most competent agents in this respect; and so, the word 'literature' has been confined for a collection of written works in any language.

In course of innumerable years of its march toward perfect civilization, mankind has been found always a devotee of literature, but with some narrow-mindedness. Every country, cast, creed or race thought it a right judgment to suppose its own literature, the most valuable of the rest. Sometimes racial or religious conflicts goaded them to satanism, resulting in destruction of such literatures which do not concur with their own way of thinking. Even moral degradation, and indifference to learning caused peoples to extinguish the highlights of their own forefathers. Those who tried to safegaurd such ancestral valuables from the furies of devillish actions, hid them in such a way that it never saw the sunlight again. Some virtully faced living graves, flames of burning hearths and even the regular actions of natural denuding agents. General negligence is not to be less blamed for this devastation. Between the teeth of an army of demons, it is not astonishing to loose the best part of our literature; and what is left, should be embraced as the remains of a chain of continuous destruction.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Recounting the importance of literature in human progress and its dreadful fate, one is unable to judge the high altitude of such persons who bestowed their life and all the resources at their desposal upon research, collection and preservence of literature, without any prejudice to some caste, creed or religion and managed suitably to make it available for general observance. If literature is the best friend of a person, prophet of a community, leader of a nation, and benefactor of the Universe, a library-builder is one and all in the same personality. His service can do more good to mankind than what hundreds of writers, thinkers and leaders can do together. He is the medium to bring the thinkers of all the ages face to face with the general mass of the present world and maintain the best of the present for future generation. He is the builder of a nation and his library is the nucleus of human progress and prosperity. He promotes the very motive of literature. And so was Shree Dev Kumar Jain, the founder of the Central Jain Oriental Library of Arrah, locally famous as The Saraswati Bhawan.

Running through the din and bustle of vehicles and hawkers on a dusty rugged narrow road in the heart of town, you suddenly stop only to have a glance at the charming exhibit of architecture, placed on the upper story of a spetacular building. Seated on a milky goose, the image of Saraswati, with a guiter in two hands, a book in the third and a lotus flower in the fourth, prompts you to stop into the small iron fencing and ascend over a few marble stairs, guarded by lofty palm trees on both the sides. You reach a spacious verandah and cannot check yourself from peeping into the front door leading to a big marble-floored hall.

You are at a fix to see the big portrait of a young person with serenity, grandeur and deep meditation. A long ray of small desks below, scatterred with the news of the day, invites you to take seat for a while on the white sheeted floor. You survey arround yourself with a feeling of curiosity mixed with awe and lo! a long chain of furnished almirahs are staring at you with eagerness to place before you a number of Socrateses, Kalidasas, Chanakyas, Paninis and several other thinkers of the past and present, they have in store for you. A person, sitting before a table, behind the two big marble pillar-pairs, is anxious to serve you at your com-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

mands. The walls are decorated with valuable paintings, unavailable manuscripts and portraits.

In a corner you find the wooden staircase that leads to the upper floor. Stepping the last srair above you bow down with reverence before the bronze image of Saraswati. Passing through the packed-up almirahs and a narrow balcony, you come to the art-gallery. Collections of old coins, postage stamps, match lables, matchless drawings and playing cards etc. simply fascinate your feeling. Some of these are scarce treasures of the collection. You should not avoid to have a view of old manuscripts on palm-leaves and tree-bark, a few of which are hanging on the walls in wooden frames and the rest are resting in the almirahs. Other gems of this big collection need a close research of a scholar.

At present the library has a collection of about 7500 printed books in several Indian languages i.e. Prakrit, Sanskrit, Hindi, Marathi, Gujrati, Kannad, Tamil and Telgu etc. The number of published English books have reached upto 3250. Besides the library is rich with its 6378 of manuscripts on palm-leaves, paper or tree-bark. The library has always tried to get true copies of manuscripts from distant parts of India, so for as its financial condition may allow. It has been the centre of literary and cultural meetings of such associations as Sahitya Mandal, Sahitya Parishad, Zila Hindi Sahitya Sammelan and several local Jain institutions. Men of renown like Mahatma Gandhi, Pt. Madanmohan Malviya, Shree Sachitanand Sinha, Diwan Mirza M. Ismail, Dr. Walther Schubring (Germany), W. Norman Brown (America) etc. have visited the library and expressed their hearty satisfaction towards its good management and value of collections.

To recall the birth and development of the library, a few words about the activities of its founder and his successors would not be unjustified The library was first installed in 1903 A. D. in the name of "Jain Dharma Pustakalya" by late B. Devkumar Jain, under the presidentship of Shree Bhattarak Harshakirti Ji. It contained a number of manuscripts collected privately by Pt. Prabhudas Jain, a scholar of Sanskrit and the grandfather of B. Devkumar. Harshkirti Ji also collected some manuscripts from local householders. It was

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

then situated in a big side-hall of the temple of Shree Shanti Nath Ji, just by the side of its present site.

According to the last will of B. Devkumar, who died in 1908, its name was changed into ' The Central Jain Oriental Library" before a large gathering of prominent scholars of far and near. The site remained the same. His request was as follows :—

"Before you all bretheren, particularly to the leaders of our Jain Community, my last request is that an emergent protection of old religious books, temples and inscriptions is urgently required, because these are the saviours of Jainism in the world. I was anxious for this but death is taking me away, all of a sudden. I had promised to practice celibacy till the fulfillment of this work, but as ill luck would have it, I could not get the virtue of completing this sacred act. Now you all are the pillars of this holy deed and it is your duty to accomplish it."

Though Dev Kumar Ji was a patron of learning and old culture from his very boyhood, this idea dawned upon him when he was on pilgrimage to the sacred shrines of the South, in 1907. He had the occasion of visiting the collections of religious books at several places and was moved to see their ill fate, facing gradual destruction due to mismanagement. He managed to instruct the local people, the importance of those valuables of the community and the way to save them. He brought several books with himself while got some others re-copied. Then he gave birth to this lively idea that is now at its full youth.

Late B. Karori Chand, the first secretary of the institution, served it much by enriching it with manuscripts, specially those on palm-leaves. He owed much to Reverend Shree Nemi Sagar Ji Varni, without whose help, the work would have been an impossibility. A large sum was invested in sending missionary to Karnatak and Tamil countries for collection of books and preparing a catalogue of all the famous Jain Libraries of the South. Year 1912, is the most commemorating period for the inaguration of "The Jain Antiquary", the only magazine of its kind, under the editorship of Shree Padmaraj Ji Jain. But its publication was discontinued only after an year because suitable help and financial stability was lacking.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

In this connection B. Devendra Prasad Ji is worth remembering as the best helping hand to B. Karori Chand in all his sacred activities. A collection of photographs of all the Jain Pilgrimage places of India was his exceptional service. Upto his last days, he held the post of assistant secretary of the library. After him it was benifitted by the valued services of Shree Suparshvadas Gupta. B.A. upto 1922. A Catalogue of all the publications and manuscripts of the collection in Prakrit and Sanskrit was his commendable work.

In April 1923, B. Nirmal Kumar Jain, the eldest son of B. Dev Kumar, took up the management to himself. Fortunately he got the chance of adding the services of an eminent scholar like Shri K. Bhujbali Shastri as the librarian. He prepared a correct and authentic catalogue of all the books and manuscripts of the library. Publication of anlogies of important unpublished manuscripts into two volumes under the title, "Prashasti Samgrah" was his praisworthy activity which was hailed by research scholars all our India. Translation and publication of *Munisubrat Kavya* into elegant, eloquant and simple Hindi is another feat of the library.

A new age in history of the library begins with the construction of the present palatial building in 1924. Though B. Devkumar had left a sum of Rs. 2000/- only for the work, it was exceptionaly due to the generous gift Rs. 25000/- by his son B. Nirmal Kumar that such a praiseworthy work was completed. During these years the library progressed speedily towards publication of rare books also. Jnan Pradipika and palmistry, Vaidya Sar Samgrah (with notes), Tiloypannati Pt I., Pratima Lekh Sangrah, Prashasti Samgrah and Jain Literature are the publications of the library so far. The work is now stand-still on account of sacarcity of paper. But 'The Jain Antiquary' reapparred in 1935 and is still regularly satisfying the the mental appetite of scholars.

The library also subscribes a number of periodicals most noteworthy of which are The Kannad Sahitya Parishat Patrika, Prabudh Karnatak, Bharati, Karnatak, Sub-dh, Triveni, Vivekabhvudaya, Sharan Sahitya, Ādhyatma Prakash, Shakti, Jai Karnatak Bandhu, Kanthirav, Kishore, Balak, Vishwavani, Viruani, Vir, Jain Darshan, Jain Sandesh, Jain Mitra, Jain Gazette, Khandelwal Jain Hitechhu,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Jin-vijay, Jain Bodhak, Ānekant, Ārya Mahila, Adarsha Jain Charit-mala, Golapurva Jain, Digamber Jain* etc.

Really Jain Siddhant Bhawan is the unique institution for research and study of Jain literature, history and antiquary. It was a bolt from the blue when the founder of such an institution was snatched away from us in the prime youth of 34 only. It is for the present Jains to recognise the real estimate of this pride of the community and help the progress of mankind by enriching it to the utmost.

---

*Besides these the the Library subscribes to many important daily and monthly magazines of Hindi, Gujarati, Kannad, Marathi, Telegu, Sanskrit and English and the full list of these appears on pages 76-77 of Shree Jain Sidhanta Bhaskar Vol. 17 No. I.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

DEVA-VANI.

Extracts from the writings and speeches of B. Deo Kumar.

Collected by Prof. Dinendra Chand Jain M. Com.

[Shree Deo Kumarji was gifted with a remarkable sense of values and a prophetic insight into philosophy. He combined in himself the spirit of a social reformer and the vision of a prophet His learned essays and editorial comments are a guide for the understanding of the philosophy of Jainism and throw light on matters relating to the welfare of Society. He edited the Jain Gazette right from the year 1895 to his last breath. His presidential address at the 12th Conference of the All India Digamber Mahasabha, which is full of religious, moral and philosophical ideas, helps us estimate his personality. Here are some of his reflections.

—Editor]

PHILOSOPHICAL IDEAS.

Samyaktwa (Right belief, etc)

Keeping firm belief in one's soul, leaving aside unspiritual actions and to be engrossed in spiritualism is Samyaktwa. No belief except Samyak Darshan can enlighten the soul. Right belief is the only boat to cross this ocean of worldly life. Unless this torch is in the hand, it is very difficult to steer safe through darkness and storm.

Self-confidence is very helpful for the progress of humanity. The real importance of life can be judged from self-confidence. If there is self-confidence, one can, without any effort, get rid of worldy passions and attachments. Soul is quite different from the body. It is structure-less, minute and a store-house of spiritual qualities like knowledge and philosophy. Because it is structureless, it can not be seen from the naked eyes. Merely the concrete body comes into vision. The soul residing within the body can be felt simply by realisation When the vision becomes Samyak, soul is gradually realised. When there is some Mithyatwa or doubt, the body is mistaken for the soul. No real work can be done by taking body as the soul, any better than can be expected from sand assumed as gold.

Principles of Karmas (Deeds)

The living beings themselves are the doers of Karmas (deeds)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

and the users of its fruits. Karma is a substance which prevails every where. Every living being gathers atoms of Karmas due to attachment tendency in his thoughts, speeches and deed. The number of atoms of Karmas sticking to the soul depends upon the degree of the worldly attachment. When the attachment is great, these atoms come to the soul in large quantity and vice-versa. Similarly, if there are strong Kashayas (ie. anger, passion etc.) these Karma-atoms remain for a longer period with the soul and produce stronger results. Conversely, when they are less they remain for a shorter period and have smaller effects By its own efforts and endeavours, the soul after destroying its Karmas can achieve salvation. When this effort diminishes, the chain of Karmas becomes longer and stronger. Sorrows or happiness arise due to the rise, decline or destruction of the Karmas. God or man is quite unable to bring happiness or sorrow to any body. Vitragi God, who is not the least attached with the world has been unnecessarily and wrongly conceived as the giver of rewards and punishments of Karmas. Really speaking, God never makes or mars anything. Human beings, animals and other creatures have taken shapes due to Nam-Karma (a type of Karma) and not because of any invisible power.

Anekant

The correct decision of anything can be made only by the principle of Anekant. The fact is that many characteristics and properties are to be found in a matter. We can make only one sided analysis of the matter having varied properties. All sided consideration is not possible without a wider vision. The man who tries to prove a view as unt ue simply after hearing it or is excited to hear the opposite view is far away from truth.

The principle of Anekant makes man thought-enduring and liberal. We can not prove hastily any principle to be false or absurd. Co-ordination of opposite views can be made only by embracing the principle of Anekant.

God.

Every soul is capable of becoming God. Fundamentally, soul is pure and full of knowledge. All the virtues of God are present in it. When any one, by his good behaviour, learning and right belief

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

destroys the collected atoms of Karmas and wipes out the darkness of the soul, he becomes God. Really, pure soul itself is God. There is no God different from purified soul. As long as there are the shackles of Karmas, virtues like Jnan (knowledge), Darshan (right belief), Sukh (happiness) and Virya (valour) are masked but on its becoming loose, the soul becomes God. The soul is liberated only when it attains salvation.

Salvation.

The perfect free state of the soul is called salvation. When human beings by their meditation, penances and power of Yoga remove the shackles of all Karmas, they achieve salvation, and then appear the Eternal Happiness, Eternal Knowledge, Eternal Darshan and Eternal Power in the soul. Here the soul has no pains. This is the end of soul.

ETHICAL IDEAS.

Devotion.

Devotion is the feeling of heart. Wordly creatures, through devotion in Vitragi God can increase their happiness. Worship of Jinendra Bhagwan removes sin, troubles, miseries, and diseases. It is the sacred duty of every individual to worship God daily. By devotion sentiments are purified, spiritual powers develop, and Kashayas diminish. Moreover, it helps the development of spiritual virtues.

Charity.

Everybody should part with atleast one-tenth of his honestly earned income for charity. If out of miserliness, one does not give charity in religious works, his wealth soon diminishes and disappears. Charity should never be given for name and fame. If somebody wants name in return for his charity, he, thereby, commits sin. Even birds and animals fulfil their necessities but charity is possible only in human life.

Swadhyaya (Studying religious books).

Swadhyaya is very essential and beneficial in this Kaliyug (sinful age). By constantly acquiring knowledge, man gets the way to happiness. Kashayas disminish by daily Swadhayaya which helps defeat worldly passions. It provides incentive for spiritual development

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

and self realisation. Those who while away their time in useless gossips, should take recourse to swadhayaya to change their habits. Swadhaya in this age is a great penance because, due to constant contemplation over spiritualistic words and meanings, dirty ideas are checked and pious ones come in.

Swadhayaya is a good method for peace of the soul. Nirjara (i. e. dimunition) of Karmas is attained by it. The darkness of Mithyatwa is washed away from the soul with the achievement of Samyaktwa. Swadhyaya is a means to control the will. It is rather beyond one's power to narrate all the advantages of Swadhayaya.

Ahimsa (Non-violence).

The presence of Rag-Dwesh (anger, passion etc.) in the heart is violence. Those who do not trouble any creature with their thought, word and action, and preserve peace, are non-violent. The power of the Non-violent is limitless. Brave alone can be non-violent. In fact, Ahimsa Dharma is the religion of Kshatriyas. It teaches the lesson of chivalry. A non-violent is a brave man. No temptation of the world can deviate him. Violence is beastly and non-violence is a devine power. The lesson of humanity can be learnt from Ahimsa.

A non-violent has first to purify himself and has to remove the inner defects. Then alone he can observe Ahimsa. Complete self purification can only to achieved through Ahimsa.

Ahimsa is such a power whose shelter children, men and women young and old can seek. The entire world can be made happy only by Ahimsa Dharma. By observing Ahimsa, strength is gained by which the strongest opposers can be faced.

Kindness.

There is no religion like kindness. Where there is no kindness, there is no humanity. The touchstone of humanity is kind feeling. He can be called kind, whose heart is moved to see others in trouble, and overflows with sympathies. Kindness is of eight types, Drabya Daya, Bhawa Daya, Sawa-Daya, Pur-Daya, Anubandh-Daya, Vyavhar-Daya, and Nishchaya Daya. We may be at present proud of showing kindness, to others, but we are not at all kind upon ourselves. Kashayas and Vikaras, which are detrimental to our soul, are being

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

taken as our own. And this is our cruelty upon ourselves. So long we are not keen towards our own progress, we can not be called kind upon ourselves.

Dharma or duty.

Dev Puja (worship of God), Guru Bhakti (devotion to the preachers), Swadhayaya. (studying religious books) Sanyam (forbearance), Tup (penance) and Dan (charity) are the six daily duties of every Grihastha. Not allowing Rag-Dwesh to enter into one's own heart and not doing an act, which pains others, is 'Dharma'. All men of the world are equal for a Dharmatama (dutiful man).

Love

Love is a miracle. We can win the cruelest heart through love. Even the ferocious wild animals can be enslaved through love. There is difference between love and infatuation. The former is commendable whereas the latter condemnable. Infatuation is connected with attachment whereas love totally discards it. Jealousy, bickerings, and disunity are prevailing to-day in society because we have forgotten the mantra of love. Everywhere to-day in the family and society is the predominance of wranglings. There is jealousy between man and man, society and society resulting in troubles and disorders. Hence, everybody should live peacefully showing due love to others. Love is the key to happiness and peace.

Distrust.

When we suspect somebody, he too, in turn distrusts us. The result is that no work is done decently. There is no greater enemy to the society than distrust. The work done with full trust is certainly completed. Where there is trust there comes the will-power.

Morality.

The best way to make life happy is to make it moral. Humanity is at stake if we do not distinguish between right and wrong, duty and no duty. It is a great ignorance to spend this life in sensual enjoyments.

Vanity.

Men insult others simply out of vanity and think themselves great. It is a great demerit and it is the sublime duty of all to

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

remove it. It is vain to be proud of transient and perishable things of the world.

Brahmacharya.

There is no power like Brahmacharya on the earth Control on senses is essential for non-violence. Brahmacharya should be maintained even in married life. Marriage means partial observance of Brahmacharya and not enjoyment of sensual pleasures. Those who think marriage as the passport of reckless sexual indulgence are on the wrong path. Men without restraint are of no where.

Service.

It is the duty and Dharma of every man to render service. Will-power develops in rendering services. It is a Dharma by which man can do good to others. Selfish man can not understand the greatness of this Seva-Dharma.

Modesty.

He who has no modesty and sobriety, has fallen from humanity. Modesty indicates the greatness of man. If one has to increase the circle of his friends, one must embrace modesty.

Determination.

The success of any act depends upon determination. Men of weak determination seldom succeed. Great things can be done through firm determination.

Perseverence.

Continued devotion to an object is perseverence. No work can be successful in its absence. When any country, society, race or community becomes idle, and ceases to exert, its fall becomes inevitable. Knowledge, wisdom, wealth and respect can be acquired through perseverence. Ordinary men by perseverence and determination can do extra-ordinary work. All the great men of the world were industrious. A foolish and poor man, on the strength of perseverence, can be wise and rich.

Good Conduct.

Men of gentle behaviour command respect. Even the religious and rich men and high authorities fall due to misconduct. To set the conduct right and look into one's defects through self-inspection

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

is humanity. Good conduct is the torch light of human civilisation. If leads us from darkness to light.

LITERARY, SOCIAL AND CULTURAL IDEAS.

Literature

Human civilisation can be preserved only through literature. The country, race or community which has not got its literature is dead. Religion too lives due to literature.

Literature expounding non-violence can alone be beneficial to humanity. The youths of to-day, by studying vulgar and dirty literature are losing their morality. Food which is the builder of the body, if taken in a wrong way, becomes fatal.

Quick arrangements should be made for preservation of Jain literature. Who will not feel the eating away of our valuable texts and literature in thousands by moths and ants? Jain religion is existing to-day only due to its rich literature.

Unity.

Unity is essential for the growth of society. As long disunity, jealousies and bickerings prevail, the progress of society remains checked up.

Ideal Society.

That society can be called an ideal whose members are literate and of high-thoughts. The society makes its march due to education. Useless luxury, drinking and smoking are such defects which lead the society towards decline. Ideal society can be organised only on its being literate.

Education.

Education is essential for social and cultural development. Men and women should be imparted education equally. Unless female education becomes prevalent in the society, progress of society is not possible. The key to social progress is education.

Aim of Education.

The aim of education is to make a balanced growth of physical, mental and spiritual powers of man. The education which generates pride, vanity and misconduct can never be beneficial. The knowledge which leads to sensual indulgence and is detrimental to the

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

progress of other living beings, which carries vanity to the peak and which pushes one down deep into the mountain valley, is in no way more than ignorance.

Early Marriage.

The greatest enemy of society is early marriage. Illiteracy is prevailing in the society due to early marriage of promising boys. How far is it proper and just to put the burden of a family in a period which should be earmarked for studies and development? If society is to be made literate and strong, early marriage must end in no time.

Marriage in old age.

Like early marriage old age marriage too, leads the society towards hell. An overwhelming number of widows are present in the society due to old-age marriage. The basic reason of evil practices and corruption is this old-age marriage. It is a sin to marry after forty.

Ways to Social Progress.

There are three factors for social progress—viz. proper efforts, good leadership and mutual co-operation.

Jain Culture.

The welfare of the world is possible only by the dissemination and diffusion of Jain culture. Society can not march by disorderly and showy tendencies. Non-violent behaviour, dress and food are the gist of Jain culture. Jain culture favours Karm-vad discarding Bhog-vad Spiritualism and not materialism has been given predominance here.

Hindi language.

A way to preserve Indian culture is the study of Hindi language. Love and interest towards Indian culture will arise by the study of Hindi. Every kind of ideas can be well expressed in Hindi-language. The language is too easy and any body can learn it very well in a short period.

Devnagri Script.

Devnagari script is the most scientific in comparison to other scripts of the world. There is a great need of its common usage.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Ideals of Sadhus.

There is a great need of Munis and Sadhus (saints and preachers) for the preservation of Jain culture. But they must be great scholars. Foolish and illiterate sadhus are a great burden to the society and they can harm the society and culture.

The true servant of society and religion are the Vitragi Munis. Those in whom anger, vanity, deception and lust are present, whose knowledge and ethics are defiled, do not deserve respect simply because they are dressed as Sadhus. Neither their own welfare nor of other's is possible by them. Knowledge should be acquired before becoming a Muni. Diksha (consecration) should be taken only after full detachment from the world. It is very difficult to maintain Muni-pad. It is highly reproachable to keep wordly desires after holding such a high rank. True Tyagis (sacrificers) are the torch bearers of society, whereas society has to suffer due to showy and deceptive Sadhus.

Ideal Grihastha.

An Ideal Grihastha is one whose behaviour is good, who is kind and benevolent, earns his livlihood honestly, is always engaged in Sanyam, charity and Swadhayaya and daily worships and meditates God, and speaks sweetly with an open heart and fears sin.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Late B. Devakumar Jain and his Jaina-Siddhanta-Bhavana-Publications.

By

Prof. R. D. Mishra.

I

The Devakumar-Jain memorial volume of the Jaina Siddhanta Bhaskara is in the hands of the reader. The editors and the publisher of this issue deserve congratulations for bringing it out. I am sure Late B. Devakumarji will be remembered long inspite of this volume. He has done enough services that way, and as such the importance of the publication lies in another direction. He was a greatman and died at a comparatively young age, about 44 years ago. By this time only a handful of his contemporaries live to recount his life and greatness of a great life is not to be seen in his massive works only. A great man is great in every moment of his life and an account thereof would remind everyone of us high and low, that "we can make our lives sublime." The reader would find many articles in this volume to serve this end.

B. Devakumarji belonged to the class of big Zamindars. In a few months to come, the whole class will be effaced from the Indian Economy and Social structure. Had the bulk of Zamindars lived a life like that of Late B. Devakumarji, their history would have been different. They had enough money and time but they did not know how to use them best, a thing which the late lamented Jainji knew and he acted up to it most splendidly.

The author of this article has privilege to know the members of the family of Jainji, and had occasions to listen to his friends.

Knowing his family means to know him as an ideal family head. When one listens to his friends recounting his acts, he finds Jainji a friend in need and a friend in deed and thus a friend indeed. Jainji was a saint both at home and abroad—a rare ideal of life in these days of hypocracy. Arrah people will remember him as a founder of an institution of international fame thereby making Arrah a place of high importance, people of Shahabad remember him as a

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

very benevolent Zamindar. The All India Jaina community rememmers him as one of its greatest benefactor, and scholars, all over the world, are forever grateful to him for his "Bhavana."

II

The Bhavana, Jain Siddhanta Bhavana, or Saraswati Bhavana as it is commonly known, was founded by him in 1905. Its purpose was twofold; one being to collect and preserve valuable manuscripts of all types, especially those that belong to the Jaina literature, the other being to publish many valuable Jain literature, both ancient and modern. To the latter end, a research Journal is being published regularly from this Bhavana. But till the year 1929, no proper attempt was made to bring out books of Jaina literature. In the same year, in confirmity of the objects of the Bhavana, the first book came out under the Devakumar Jain series founded on the donation of B. Nirmal Kumarji the son of the late Jainji and the then secretary of the Bhavan.

The book published first in the series is श्रीमुनिसुव्रतकाव्यम् of श्री अर्हद्दास It was edited by Pandit K. Bhujabali Shastri and Haranath Dwivedi incorporating editors' preface, the publisher's remark and Sanskrit explanatory notes and Hindi translation of the verses. In the editor's preface, we find a few lines on the author's biography and a literary appreciation of his work. There they have omitted the sources on which their text is based—a thing which has found place in publisher's note where we also find the history of origin of the series.

The काव्य referred to above, depicts the life of श्रीमुनिसुव्रतनाथ who was the prince of the Rajagriha kingdom and became the king thereof later on. He gave up the life he had so far lived and took to penance according to the Jaina theology and attained the states of a तीर्थंकर।

The काव्य consists of ten सर्ग's, each सर्ग having a proper name viz भगवदभिनजवर्णन, भगवज्जननी-जनकवर्णन, भगवद्गभीवरतणवर्णन, भगवज्जनमोत्सववर्णन, भगवन्मंदरानयनवर्णन, भगवज्जन्माभिषेकवर्णन, भगवत्कौमारमिवनदारकर्मसाम्राज्यवर्णन, भगवत्परिनिष्क्रमणवर्णन, भगवत्तपोवर्णन, and भगवदुभयमुक्तिवर्णन। On the average, number of stanzas per canto is thirty five, In many other respects the काव्य confirms to the criteria of a महाकाव्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

and the descriptions run on traditional lines. Verses mostly belong to उपजाति group.

A work of a similar theme is the बुद्धचरितम् of श्री अश्वघोष. But it is much higher in many respects than the काव्य in question, so far pure poetry is concerned. But both the poets have discussed the main philosoplical ideas of their respective religions in equally excellent style. Traditional ideas have also been adhered to at many places, as for example, the dream of a white elephant to the mother of the तीर्थंकर when she concevied.

Yet another thing. Looked from the very conservative point of view, incorporation of Canto II cannot be justified. Such descriptions as we find in the canto do not become of a devotee. It is on account of this that even Kalidas has been sacked for writing the कुमारसंभवम् by many orthodox critics.

The Sanskrit annotation of the काव्य is very fine. It comprises paraphrasing, grammer and explanations of various philosophical terms. But unlike other exp annotaters this annotater has omitted the name of the metre everywhere.

The Hindi Translation is not satisfactory. The printing is satisfactory but for a few mistakes.

The second publication in the series is a combined volume of two Sanskrit works ज्ञानप्रदीपिका and सामुद्रिकशास्त्रम्. It was published in 1934 and is edited and translated in Hindi by Sri Ramvyas Panday of the Banaras Hindu University. The volume, besides the texts, contains a short preface by the editor and an article in introduction to ज्योतिष by Pt. K. Bhujabali Shastri. In the latter article we find the sources of the text. Then the whole text of the first work namely ज्ञानप्रदीपिका is given follwed by two texts again with Hindi translation stanzawise.

The ज्ञानप्रदीपिका is a book on प्रश्नतन्त्र. It consists of twenty-seven काण्ड's in over 500 verses in all, named after the topics discussed therein. They cover great variety of subjects relating to human life e.g. जीवन-मरण, पुत्रोत्पत्ति विवाह, नौयात्रा, etc.

The method adopted in the discussion is the प्रश्न-लग्न method, and it has been detailed from every point of view. The author says that wise man should predict only after considering various factors such

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

as बलाबल of the planets etc. Then there considerations have been discussed in detail at appropriate places.

The style points out that the book belong to केरल School. The स्वप्नकाण्ड contains an original thing—it is the life to come after death.

The Hindi translation is not satisfactory for at places it has failed to bring out the meaning. The portion of the text with translation contains misprints.

The other book, सामुद्रिक शास्त्रम् is a very small book of about 109 verses in all divided into two parts (or पर्व) one detailing the nature and prospects of a man as judged from his features and the other of the same theme but referred to women. These two branches of ज्योतिष are empirical in nature and therefore one cannot say with much confidence about their ultility and accuracy. Yet they cannot be summarily discarded.

The third inorder of publication is जैनप्रतिमा-लेखसंग्रह, edited by Sri Kamta Pd. Jaina. The editor has collected and edited the inscription as found on the Jaina images of Manpuri. Many of the inscriptions are very old. They contain references to many rulers big and small, many श्रावक and आचार्य. Some of them are complete and rest is incomplete. The editor has tried to fill up the gaps by giving explanatory notes as far as posible. However it is very difficult to reconstruct a continuous history out of them. The editor has given the discription of many places in his explanatory notes. He has also made references to the origin of the various castes among the Jaina e.g. अग्रवाल, जैसवाल etc. This has enhanced the ultility of the book much. The printing is fair.

The fourth publication of the series is a book on Aurveda entitled वैद्यसार. It came out in 1942 and is edited and translated by Pt. Satyandhar Jaina Aurvedacharya Kavyatirtha. In the beginning of the book there are two introductory prefaces, one by Pt. Kanahiya Lal Jain of Kanpur and the other by Pt. K.B. Shastri and on behalf of the publisher, B. Nirmal Kumar Jain. The two prefaces contain much information. The first comprises things like the cause and the result of the disease according to the Aurveda theory, the difinition of the Aurveda Science, its different departments and essential features. It also discusses place of Aurveda in Jainism and the

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

contribution of the Jains to that branch of learning. Here we come to know of the reason as to why the work under discussion contains Rasayanik prescription only. It is so because आसव, अरिष्ट, etc. contain germs and as such the Jains cannot take it.

The second preface discusses what we may call the achievements of the ancient India in the branch of medical science. There we have references to the surgical instruments, etc

Coming to the work itself it seems to be an antholoy of well-tried prescriptions. There are hundred and seventy-two drugs on about forty different diseases.

Many of the medicines are not altogether original but a variance of the ingredients of the medicines of the same names in other books on Aurveda. However there are a few new drugs one for example being कन्दर्परस a drug on veneral disease.

The printing is quite good.

The fifth publication is "the Jaina Literature in Tamil" by Prof A. Chakravarti M. A. I E S (Retd). It is a very useful book written by a master mind in a masterly style. The first three essays, namely Cultural Background of Jainism, Jainas in the Tamil country and Three Saṅgams and Jaina influence give much information to the reader. To many of the confirmist readers it may seem strange to know that many wars, events of extraordinary importance which have changed the course of time and of many big personalities have their origin in ब्राह्मण-क्षत्रिय conflict which has raged for thousands of years. However it does not mean that all Brahmins were on one side and the Kshtriyas on the other The author has considered this point again as the conflict between the Western Aryans and the Eastern Aryans, in the former Brahmins and their sacrificial ritualism predominating which in the latter Kshtriyas and their Ātamavidyā predominating. Then he describes the impact of the Jaina culture with the contemporary non-Jaina culture of South India and their actions and reactions. Then the rest of the book discusses in detail a few Tamil books of the Jainas.

प्रशस्ति-संग्रह is the sixth publication of the series. It was published in the year 1942 under the editorship of the Pt. K. B. Shastri the librarian of the Bhavana. There is an introductory note by A.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Shamasastry followed by the editor's preface and then the text itself. As written by Shamasastry, the work, प्रशस्ति-संग्रह, is a good descriptive catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts bearing Nos from 196 to 263 and 54 to 78 about 54 mss in all." All the manuscripts belong to the Jaina Oriental Library. The editor's preface speaks of everything that led to the publication—a pioneer thing so far as the Digambar Jainas are concerned.

The work is a collection of such portions of works of different authors as help in their identification. It is a matter of great regret that many of the authors of the days of yore did not speak anything about themselves. This stands much in the way of assessing the merits of the works themselves and we fail to reconstruct our history uninterrupted. The प्रशस्तिसंग्रह helps us much that way. The manuscripts included in the work include various branches of learning, e.g. philosophy, medicine, Jyotish etc.

It is a very thoroughly edited book. The value is much enhanced because of the annotations here and there and the index. The printing is fair.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री सरस्वती प्रिंटिंग वर्क्स् लि० आरा ।